ॐ ह्री अर्हं नम

श्री राइय-दैवासिक प्रतिक्रमण सूत्र

[शब्दार्थ, भावार्थ, विवेचन सहित]

— ० —

प्रेरक

परम पूज्य गणाधीश श्री १००१
श्री उदयसागरजी महाराज सा०



शब्दार्थ, भावार्थ एव विवेचन कर्त्ता
व्याख्यान दिवाकर पडित हीरालालजी दूगड, न्यायतीर्थ



प्रकाशक
श्री रामलाल लूणिया जैन धर्म प्रचारक ट्रस्ट,
नीति माग, जयपुर रोड, अजमेर

पुस्तक—

खरतरगच्छीय श्री राइय-दैवसिक प्रतिक्रमण सूत्र

विषय—

चरणकरणानुयोग

प्र रक—

पू. गणाधीश आर्यपुत्र १००१ श्री उदयसागरजी महाराज सा.

प्रथम हिन्दी प्रकाशन—

विक्रम सवत् २०२७; ईस्वी सन् १९७०;

द्वितीय हिन्दी प्रकाशन—

आषाढ सुदी ११ सं. २०३१.
३० जून, १९७४.

तृतीय हिन्दी प्रकाशन—

चेत सुदी १३ वि सं. २०३३.
महावीर जयन्ति सन् १९७६ ई.

चतुर्थ हिन्दी प्रकाशन

वैशाख सुदी ३ सं. २०३७
अक्षम तृतीया, अप्रेल १९८०

पुस्तक संख्या—

दो हजार

प्रकाशक—

श्री रामलाल लूणिया जैन धर्म प्रचारक ट्रस्ट
१०/२६४, नीति मार्ग, अजमेर (राज.)

मूल्य—

रु. ४-००

नोट :—(१) एक मुश्त पाँच पुस्तके मंगाने वालो से पोस्टेज रजिस्ट्री खर्च नही लिया जायेगा।
(२) एक साथ एक सौ प्रतियाँ मंगाने वालो के लिए मूल्य : ३-००

मुद्रक—

प्रतापसिह लूणिया
जॉब प्रिंटिग प्रेस, ब्रह्मपुरी, अजमेर

विषयानुक्रम

दो शब्द

कई वर्षों से विचार था कि खरतगच्छीय प्रतिक्रमण का हिन्दी भाषा मे अर्थ सहित प्रकाशन कराया जावे परन्तु इस कार्य को करना कोई मामूली काम नही था, क्योंकि कार्य तभी सफल हो सकता है जबकि पाँच समवाय की प्राप्ति हो। सौभाग्य से वि० स० २०२५ मे पर्युषण पर्व की आराधना कराने तथा प्रवचन आदि के लिए दिल्ली के व्याख्यानदिवाकर, विद्याभूषण, न्यायतीर्थ, न्यायमनीषी स्नातक श्रावकरत्न पंडित हीरालालजी दूगड जैन अमरावती जाते हुए नागपुर में परम पूज्य आर्यपुत्र श्री १०८ श्री उदयसागरजी महाराज साहब के दर्शनार्थ एक दिन के लिए ठहरे। उसी दिन पूज्यवर ने श्री दूगडजी को यह कार्य सम्पन्न करने के लिये आग्रह किया तथा आपने गुरुदेव का आदेश शिरोधार्य कर लिया।

आपको यह कार्य सौंपने का मुख्य कारण यह था कि आप जैन दर्शन के सुयोग्य विद्वान हैं और आपने (१) निगठ्ठ नायपुत्त श्रमण भगवान महावीर तथा मासाहार परिहार (२) बगाल का आदि धर्म (३) जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तर, (४) शकुन विज्ञान (५) परम पावन श्री हस्तिनापुर महातीर्थ का इतिहास आदि अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथो का लेखन, सम्पादन तथा अनुवाद किया है।

वर्तमान युग मे पुरातन जैन धर्म की क्रियाओ का ज्यादा महत्व है, यह इस पुस्तक से भली-भाँति जाना जा सकता है कि कितनी महान भावनाओ से हम तीर्थ, देव, आचार्यों, गुरुओ आदि की वदना करते हैं, हृदय श्रद्धा से भाव विभोर हो जाता है। समाज के प्रेरक त्यागी वर्ग महाराज सा० एव गुरुणी जी महाराज सा से मेरी विनम्र प्रार्थना है कि वे सर्वत्र इस पुस्तक के प्रसार को प्रेरणा करें ताकि घर-घर मे

इस "पंच प्रतिक्रमण" का प्रभाव बढ़े और नवीन समाज भी चैतन्य हो धर्म के महत्व को पहिचाने।

हम इस हिन्दी अनुवाद को सुविज्ञ पाठकों के कर-कमलो मे देते हुए आशा करते हैं कि सूत्रो का शुद्ध पाठ कंठस्थ किया जाय, उनका वास्तविक अर्थ समझा जाय, इस दृष्टि से श्रावक, श्राविका एवं जैन समुदाय इस पुस्तक का उपयोग करने की भावना रखें तथा पूर्ण आदर रखते हुए सदुपयोग करके अपनी आत्मा की प्रवृत्ति को जागृत करे।

सभी पाठकगणों से विनम्र निवेदन है कि प्रमादादि दोष से रही त्रुटियाँ जो उनके ध्यान मे आवें उन्हें कृपया हमें सूचित करें।

इस चतुर्थ प्रकाशन के सुन्दर एवं शीघ्र मुद्रण का श्रेय श्री प्रताप-सिहजी लूणिया, जॉब प्रेस के अधिष्ठाता को है। समाज सेवी श्री चाँदमलजी सीपाणी मत्री, श्री जिनदत्तसूरि मंडल, अजमेर ने इस पुस्तक का प्रूफ संशोधन करके अपना अमूल्य योगदान दिया उनके लिए उन्हे भी हार्दिक धन्यवाद।

निवेदक
अमरचन्द लूणिया
अध्यक्ष
श्री रामलाल लूणिया
जैन धर्म प्रचारक ट्रस्ट
नीति मार्ग, जयपुर रोड,
अजमेर

अक्षय तृतीया
वि. सं. २०३७
दि० २२-४-८०

आचार्य श्री रजनीश के विचार—

प्रतिक्रमण

मैं महावीर की दूसरी बडी देनो मे से श्रावक बनने की कला को मानता हू। यह बडे से बडे योगदान मे से एक है कि आदमी श्रावक कैसे बने ? और तभी उन्होने उठा दिया "प्रतिक्रमण"। प्रतिक्रमण शब्द श्रावक बनने की कला का एक हिस्सा है। हमे ख्याल भी नही कि प्रतिक्रमण का अर्थ क्या होता है। आक्रमण का अर्थ होता है हमला करना और प्रतिक्रमण का अर्थ होता है सब हमला लौटा देना, वापस लौट आना। हमारी चेतना आक्रमण है, साधारणत प्रतिक्रमण का अर्थ है वापस लौट आना, सारी चेतना को समेट लेना वापस, जैसे सूर्य शाम को अपनी किरणो का जाल समेट लेता है, वैसे ही अपनी फैली हुई चेतना को मित्र के पास से, शत्रु के पास से, पत्नि के पास से, बेटे के पास से, मकान से और धन से वापस बुला लेना है।

अगर इसका अभ्यास जारी रहे कि तुम रोज घडी भर को प्रतिक्रमण कर जाओ, सब तरफ से चेतनाओ को वापस बुला लो, कही से सम्बन्ध न रखो, असग हो जाओ, तो प्रतिक्रमण हुआ।

प्रतिक्रमण ध्यान का पहला चरण है। सामायिक दूसरा चरण। सामायिक को महावीर ने बिलकुल मुक्त कर दिया है। समय का मतलब होता है आत्मा। सामायिक का मतलब आत्मा मे होना। प्रतिक्रमण है पहला हिस्सा कि दूसरे से लौट आओ, सामायिक है दूसरा हिस्सा अपने मे हो जाओ। और जब तक दूसरे से लौटोगे नही तब तक अपने मे होओगे कैसे ? इसीलिए पहली सीढी प्रतिक्रमण और दूसरी सीढी सामायिक है।

"महावीर मेरी दृष्टि मे" से साभार

श्री गुरुदेव स्तवन

(कव्वाली)

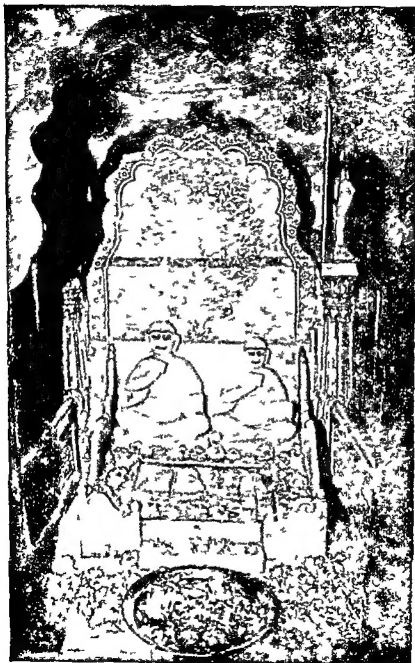
क्या हैं अपूर्व दर्शन, गुरुदेवजी तुम्हारे।
दुःख दूर कीजिये सब, हम भक्त हैं तुम्हारे ॥टेर॥क्या है॥

गुरु के बिना जगत में, है कौन मार्गदर्शक।
आया शरण में स्वामी, गुरुदेवजी तुम्हारे ॥ १ ॥क्या है॥

चिंतामणी से बढ़कर, मनइच्छितार्थ दानी।
सानी न और जग में, गुरुदेवजी तुम्हारे ॥ २ ॥क्या है॥

हरि पूज्य जैन शासन, पावन प्रकाश कारी।
चाहूँ सदैव दर्शन, गुरुदेवजी तुम्हारे ॥ ३ ॥क्या है॥

दादा गुरु श्री १००८ जंगम युगप्रधान भट्टारक



दादा श्री जिनदत्तसूरीश्वरजी महाराज एवं
दादा श्री जिनकुशलसूरीश्वरजी महाराज

राइय-दैवसिक प्रतिक्रमण

[अर्थ सहित]

नवकार (नमस्कार) सूत्र

णमो अरिहंताणं। णमो सिद्धाणं। णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं। णमो लोए सव्व-साहूणं।

एसो पंच-णमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥१॥

[1]पद ९, संपदा ८, गुरु ७, लघु ६१, सर्व वर्ण ६८

---

१ इस सूत्र में अरिहन्त और सिद्ध इन दो प्रकार के देव को तथा आचार्य, उपाध्याय, साधु इन तीन प्रकार के गुरु को नमस्कार किया है। ये पांच परमेष्ठी परमपूज्य हैं।

शब्दार्थ

णमो—नमस्कार हो ।
अरिहंताण—अरिहंत भगवन्तों को
सिद्धाणं—सिद्ध भगवन्तो को
आयरियाणं-आचार्य महाराजों को
उवज्झायाणं-उपाध्याय महाराजो को
लोए—लोक में (ढाई द्वीप में)
सव्व-साहूणं—सब साधुओ को
एसो—यह
पंच-णमुक्कारो—पांच नमस्कार
(पांचों को किया हुआ नमस्कार)
सव्वपावप्पणासणो-सब पापों का नाश करने वाला
च—और
सव्वेसि—सब
मगलाणं—मंगलों मे
पढमं—पहला-मुख्य
हवइ—है
मंगलं—मंगल

भावार्थ—अरिहन्त भगवन्तों को नमस्कार हो । सिद्ध भगवन्तो को नमस्कार हो । आचार्य महाराजों को नमस्कार हो । उपाध्याय महाराजों को नमस्कार हो । ढाई द्वीप में वर्त्तमान सब साधुओ को नमस्कार हो । यह पाँच (परमेष्ठियों को किया हुआ) नमस्कार सब पापों (अशुभ कर्मो) को नाश करने वाला तथा सब प्रकार के लौकिक-लोकोत्तर मंगलो मे प्रथम (प्रधान-मुख्य) मंगल है ।

इन पाच परमेष्ठियो के एक सौ आठ (१०८) गुण हैं, इसके लिये कहा है—

> **"बारस गुण अरिहंता, सिद्धा अट्ठे सुरि छत्तीसं ।**
> **उवज्झाया पणवीस, साहू सगवीसं अट्ठसयं ॥"**

"अरिहन्त के बारह, सिद्ध के आठ, आचार्य के छत्तीस, उपाध्याय के पच्चीस और साधु के सत्ताईस गुण हैं । सब मिलकर पंच-परमेष्ठियों के १०८ गुण हैं ।" वे इस प्रकार हैं ।

अरि+हन्त=अरिहंत=अरि अर्थात् राग द्वेष आदि अभ्यतर शत्रुओ को हत अर्थात् हनन करने वाले। इनका दूसरा नाम जिन है। जिसका अर्थ है जीतने वाले। अर्थात् राग द्वेष को जीतकर कर्म शत्रुओ का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त करने वाले अरिहत कहलाते हैं। केवलज्ञान पाकर भव्य जीवो को प्रतिबोध देते हैं और प्रतिबोध देने के लिये विचरते हैं भव्य जीवो को प्रतिबोध देकर धर्मतीर्थ की स्थापना करते हैं इसलिए तीर्थंकर भी कहे जाते हैं।

अरिहन्त भगवान् के गुण

(१) अरिहन्त के आठ प्रातिहार्य तथा चार मूल अतिशय कुल बारह गुण इस प्रकार हैं

आठ प्रातिहार्य

१ अशोक वृक्ष—जहा भगवान् का समवसरण रचा जाता है, वहा उनकी देह से बारह गुणा बडा अशोक वृक्ष (आसोपालव का वृक्ष) की रचना देवता करते हैं। उसके नीचे भगवान् बैठकर देशना (उपदेश) देते हैं।

२ सुरपुष्पवृष्टि—एक योजन प्रमाण समवसरण की भूमि मे देव सुगन्धित पचवर्ण वाले सचित्त पुष्पो की घुटनो प्रमाण वृष्टि करते हैं। पुष्प जल तथा स्थल मे उत्पन्न होते हैं और भगवान् के अतिशय से उनके जीवो को किसी प्रकार की बाधा-पीडा नही होती।

३ दिव्य-ध्वनि—भगवान् की वाणी को देवता मालकोश राग, वीणा, बसी आदि से स्वर पूरते हैं।

४ चामर—रत्न-जडित स्वर्ण की डडी वाले चामर समवसरण मे देवता भगवान् को वीजते हैं।

५ आसन—भगवान् के बैठने के लिये रत्नजडित सिंहासन की देवता रचना करते हैं।

वासुदेव, वलदेव, चक्रवर्ती-देवता तथा इन्द्र सब इनको पूजते हैं अथवा इनको पूजने की अभिलाषा करते हैं।

१२. वचनातिशय-श्री तीर्थंकर भगवान् की वाणी को देव, मनुष्य और तीर्यंच सब अपनी-अपनी भाषा में समझते हैं। क्योंकि उनकी वाणी संस्कारादि गुण वाली होती है। यह वाणी पैंतीस गुणो वाली होती है। ३५ गुण इस प्रकार हैं—

१. सब स्थानों में समझी जाय। २. योजन प्रमाण भूमि में स्पष्ट सुनाई दे। ३. प्रौढ। ४. मेघ जैसी गम्भीर। ५. स्पष्ट शब्दों वाली। ६. संतोष देने वाली। ७. सुनने वाला प्रत्येक प्राणी ऐसा जाने की भगवान् मुझे ही कहते है। ८. पुष्ट अर्थवाली। ९. पूर्वापर विरोध रहित। १०. महापुरुषो के योग्य। ११. संदेह रहित। १२. दूषणरहित अर्थ वाली। १३. कठिन और गहन विषय भी सरलतापूर्वक समझ में आ जाय ऐसी। १४. जहाँ जैसा उचित हो वैसी वोली जाने वाली। १५. छः द्रव्यो तथा नव तत्त्वो को पुष्ट करने वाली। १६. प्रयोजन सहित। १७. पद रचना वाली। १८. छः द्रव्य और नवतत्त्व की पटुतावाली। १९. मधुर। २०. दूसरो का मर्म न भेदाय ऐसी चातुर्यवाली। २१. धर्म तथा अर्थ इन दो पुरुषार्थों को साधने वाली। २२. दीपक समान अर्थ का प्रकाश करने वाली। २३. पर-निन्दा और आत्मश्लाघा रहित। २४. कर्त्ता, कर्म, क्रियापाद, काल और विभक्ति वाली। २५. श्रोता को आश्चर्य उत्पन्न करे ऐसी। २६. सुनने वाले को ऐसा स्पष्ट ज्ञान हो जाय कि वक्ता सर्व गुण-सम्पन्न है। २७. धैर्यवाली। २८. विलम्व रहित। २९. भ्रांति रहित। ३०. सब प्राणी अपनी-अपनी भाषा मे समझें ऐसी। ३१ अच्छी वुद्धि उत्पन्न करे ऐसी ३२. पद के, शब्द के अनेक अर्थ हो ऐसे शब्दों वाली। ३३. साहसिक गुणवाली। ३४. पुनरुक्ति दोष रहित। ३५ सुनने वाले को खेद न उपजे ऐसी।

सिद्ध भगवान् के आठ गुण

जिन्होने आठ कर्मों का सर्वथा क्षय कर लिया है, मोक्ष प्राप्त कर लिया है और जन्म-मरण रहित हो गये हैं उन्हें सिद्ध कहते हैं। इनके आठ गुण हैं—

१ अनन्तज्ञान—ज्ञानावरणीय कर्म सर्वथा क्षय होने से केवलज्ञान प्राप्त होता है, इससे सब लोकालोक का स्वरूप जानते हैं।

२ अनन्त दर्शन—दर्शनावरणीय कर्म का सर्वथा क्षय हो जाने से केवल दर्शन प्राप्त होता है, इससे लोकालोक के स्वरूप को देखते हैं।

३ अव्याबाध सुख—वेदनीय कर्म का सर्वथा क्षय होने से सब प्रकार की पीडा रहित निरुपाधिपना प्राप्त होता है।

४ अनन्त चारित्र—मोहनीय कर्म सर्वथा क्षय होने से यह गुण प्राप्त होता है। इसमे क्षायिक सम्यक्त्व और यथाख्यात चारित्र का समावेश होता है, इससे सिद्ध भगवान् आत्मस्वभाव मे सदा अवस्थित रहते हैं। वहाँ यही चारित्र है।

५ अक्षय स्थिति—आयुष्य कर्म के क्षय होने से कभी नाश न हो (जन्म-मरण रहित) ऐसी अनन्त स्थिति प्राप्त होती है। सिद्ध की स्थिति की आदि है मगर अन्त नही है, इससे आदि अनन्त कहे जाते हैं।

६ अरूपी—नामकर्म के क्षय होने से वर्ण, गंध, रस तथा स्पर्श रहित होते हैं, क्योंकि शरीर हो तभी वर्णादि होते हैं। सिद्ध के शरीर नही है इससे अरूपी होते हैं।

७ अगुरुलघु—गोत्र कर्म के क्षय होने से यह गुण प्राप्त होता है, इससे भारी-हल्का अथवा ऊंच-नीच का व्यवहार नही रहता।

८ अनन्तवीर्य—अंतराय कर्म का क्षय होने से अनन्त दान, अनन्त लाभ, अनन्त भोग, अनन्त उपभोग तथा अनन्तवीर्य प्राप्त होता है।

सिद्ध भगवान् के ऐसी स्वाभाविक शक्ति रहती है कि जिससे लोक को अलोक और अलोक को लोक कर सके। तथापि सिद्धो ने भूत-काल मे कदापि ऐसा वीर्य स्फोट (शक्ति का प्रयोग) किया नहीं वर्तमान मे करते नही और भविष्य में कदापि करेंगे भी नही। क्योंकि उनका पुद्गल के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं होता। इस अनन्तवीर्य गुण से वे अपने आत्मिक गुणों को जिस स्वरूप में है वैसे ही स्वरूप मे अवस्थित रखते है। इन गुणो मे परिवर्तन नहीं होने देते।

आचार्य के छत्तीस गुण

जो पाँच आचार को स्वयं पालें और अन्य को पलावें तथा धर्म के नायक हैं, श्रमण-संघ मे राजा समान है उनको 'आचार्य' कहते है। आचार्य महाराज के छत्तीस गुण होते हैं—

१ से ५—पांच इन्द्रियों के विकारों को रोकने वाले अर्थात् (१) स्पर्शनेन्द्रिय (त्वचा-शरीर), (२) रसनेन्द्रिय (जीभ), (३) घ्राणेन्द्रिय (नाक), (४) नेत्रेन्द्रिय (आंखे), और श्रोत्रेन्द्रिय (कान), इन पांच इन्द्रियो के २३ विषयों में अनुकूल पर राग और प्रतिकूल पर द्वेष न करें।

६ से १४—ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियों को धारण करने वाले अर्थात् शील (ब्रह्मचर्य) की रक्षा के उपायों को सावधानी से पालन करने वाले जैसे कि—(१) जहाँ स्त्री, पशु अथवा नपुंसक का निवास हो वहां न रहे। (२) स्त्री के साथ रागपूर्वक वातचीत न करें (३) जहां स्त्री वैठी हो उस आसन पर न वैठें, उसके उठकर चले जाने के वाद भी दो घड़ी तक न वैठें। (४) स्त्री के अंगोपांग को रागपूर्वक न देखें (५) जहाँ स्त्री-पुरुष शयन करते हों अथवा काम-भोग की बातें करते हों वहाँ दीवार अथवा पर्दे के पीछे सुनने अथवा देखने के लिए न रहे (६) ब्रह्मचर्य व्रत लेने पर साधु होने से पहले की हुई काम-क्रीड़ा को

विषय-भोगो को याद न करें। (७) रसपूर्ण आहार न करें। (८) निरस आहार करे, पर भूख से अधिक न खाए। (९) शरीर की शोभा-शृंगार-विभूषा न करे।

१५ से १८—चार कषायो का त्याग करने वाले। ससार की परम्परा जिससे बढे उसे कषाय कहते हैं। कषाय के चार भेद हैं-क्रोध (गुस्सा), मान (अभिमान), माया (कपट) और लोभ (लालच)।

१९ से २४—पाच महाव्रतो को पालने वाले। महाव्रत बडे व्रत को कहते हैं जो पालने मे वहुत कठिन हैं। महाव्रत पाँच हैं—(१) *प्राणातिपात विरमण-अर्थात् किसी जीव का वध न करना* (२) मृषावाद विरमण—अर्थात् चाहे जितना भी कष्ट सहन करना पडे तो भी असत्य वचन नही बोलना। (३) अदत्तादान विरमण—मालिक के दिये विना साधारण अथवा मूल्यवान कोई भी वस्तु ग्रहण न करना। (४) मैथुन विरमण—मन, वचन और काया मे ब्रह्मचर्य का पालन करना। (५) परिग्रह विरमण—किसी भी वस्तु का सग्रह न करना। वस्त्र, पात्र, धर्म-ग्रथ ओघा आदि सयम पालनार्थ उपकरण आदि जो-जो वस्तुएँ अपने पास हो उन पर भी मोह-ममता नही रखना।

२५ से २८—पाँच प्रकार के आचारो का पालन करने वाले। पाँच आचार ये हैं—(१) ज्ञानाचार—ज्ञान पढे और पढावें, लिखे और लिखावें, ज्ञानभडार करे और करावें तथा ज्ञान प्राप्त करने वालो को सहयोग दें। (२) दर्शनाचार—शुद्ध सम्यक्त्व को पाले और अन्य को सम्यक्त्व उपार्जन करावें। सम्यक्त्व से पतित होने वालो को समझा बुझाकर स्थिर करें। (३) चारित्राचार—स्वय शुद्ध चारित्र को पाले, अन्य को चारित्र मे दृढ करे और पालने वाले की अनुमोदना करे। (४) तपाचार—छै प्रकार के बाह्य तथा छै प्रकार के आभ्यतर, इस प्रकार बारह प्रकार से तप करे, अन्य को करावे तथा करने वाले की अनुमोदना करे। (५) वीर्याचार—धर्माचरण मे अपनी शक्ति को

छिपावे नही अर्थात् सब प्रकार के धर्माचरण करने में अपनी शक्ति को सम्पूर्ण रीति से विकसित करे।

२९ से ३६—पांच समिति तथा तीन गुप्ति का पालन करने वाले। चारित्रधर्म की रक्षा के लिये पाँच समिति और तीन गुप्ति-इन आठ प्रवचन माता को पालने की आवश्यकता है। पांच समिति इस प्रकार है :—

(१) **ईर्यासमिति**—जब चले फिरे तो जीवो की रक्षा के लिए उपयोगपूर्वक चलें अर्थात् चलते समय दृष्टि को नीचे रखकर मुख के आगे साढे तीन हाथ भूमि को देख कर चलें। (२) **भाषा समिति**—निरवद्य, पापरहित और किसी जीव को दु.ख न हो ऐसा वचन बोले। (३) **एषणा समिति**—वस्त्र, पात्र. पुस्तक, उपकरण आदि शुद्ध, विधि-पूर्वक और निर्दोष ग्रहण करे। (४) **आदान-भांड-पात्र-निक्षेपण समिति**—जीवों की रक्षा के लिये वस्त्र-पात्र आदि जयणा पूर्वक ग्रहण करना और जयणा से रखना। (५) **पारिष्ठापनिका समिति**—जीव रक्षा के लिए जयणापूर्वक मल, मूत्र, श्लेष्म आदि शुद्ध भूमि में परठवे। इस प्रकार पाँच समिति का पालन करें।

तीन गुप्ति—(१) मन गुप्ति—पाप कार्य के विचारों से मन को रोके अर्थात् आर्त ध्यान रौद्रध्यान न करे। (२) **वचन गुप्ति**—दूसरों को दु.ख हो ऐसा दूषित वचन नही बोले, निर्दोष वचन भी विना कारण न बोले। (३) **काय गुप्ति**—शरीर को पाप कार्य से रोके, शरीर को बिना प्रमार्जन किये न हलावे-चलावे।

यह आचार्य के छत्तीस गुणो का संक्षिप्त वर्णन किया है।

उपाध्याय के पच्चीस गुण

जो स्वयं सिद्धान्त पढ़े तथा दूसरों को पढ़ावें और पच्चीस गुण

२. स्थापनाचार्यजी की तेरह बोल की पडिलेहणा

शुद्ध स्वरूप धारू १ ज्ञान २, दर्शन ३, चारित्र ४, सहित सद्दहणा शुद्धि ५, प्ररूपणा शुद्धि ६, स्पर्शना शुद्धि ७, सहित पाँच आचार पालूं ८, पलावूं ९, अनुमोदूं १०, मनो गुप्ति ११, वचन गुप्ति आदरूं १३।

वायुकाय, (११) वनस्पतिकाय, और (१२) त्रसकाय. इन छः काय के जीवो की रक्षा करे।

१३ से १७—अपनी पाँच इन्द्रियों के विषय-विकारों को रोकें।

१८ से २७—(१८) लोभ निग्रह, (१९) क्षमा, (२०) चित्त की निर्मलता, (२१) शुद्ध रीति से वस्त्रादि की पडिलेहणा, (२२) सयम योग प्रवृत्ति अर्थात् पांच समितियो और तीन गुप्तियो का पालन करना एव निद्रा, विकथा तथा अविवेक का त्याग करना (२३) चित्त को खोटे विचारो से रोकना (अकुशल चित्त निरोध) (२४) अकुशल वचन का निरोध, (२५) अकुशल काया का निरोध (कुमार्ग मे जाने से रोकना) (२६) सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास आदि बाईस परिषहो को सहन करना और (२७) मरणादि उपसर्गों को सहन करना। इस प्रकार साधु उपर्युक्त सत्ताईस गुणों का पालन करें।

इस प्रकार :—

अरिहन्त के १२, सिद्ध के ८, आचार्य के ३६, उपाध्याय के २५ तथा साधु के २७ गुण; इन सबको मिलाने से पंच-परमेष्ठी के १०८ गुण हुए।

नवकारमाला के १०८ मनके रखने का एक हेतु यह भी है कि है कि इससे नवकार मन्त्र का जाप करते हुए पंच परमेष्ठी के १०८ गुणो का स्मरण, मनन, चितन किया जावे।

३ खमासमण सूत्र

इच्छामि खमासमणो ! वंदिउं जावणिज्जाए निसीहिआए मत्थएण वंदामि ।

गुरु ३, लघु २५, सब वर्ण २८

शब्दार्थ

इच्छामि—मैं चाहता हू ।
खमासमणो—हे क्षमाश्रमण-क्षमाशील तपस्विन् गुरु महाराज
वंदिउ—वंदन करने के लिए
जावणिज्जाए—शक्ति के अनुसार अथवा सुखसाता पूछकर
निसिहिआए—सब पाप कार्यों का निषेध करके अथवा अन्य सब कार्यों को छोडकर अथवा अविनय, आशातना की क्षमा मांगकर ।
मत्थएण-मस्तक से (मस्तक झुकाकर)
वंदामि-मैं वंदना करता हूँ ।

भावार्थ—हे क्षमाशील तपस्विन् गुरु महाराज ! आपकी मैं सुख-साता पूछ कर अपनी शक्ति के अनुसार अन्य सब कार्यों का निषेध करके, सब पाप-कार्यों से निवृत्त होकर तथा अविनय आशातना की क्षमा मागकर वंदन करना चाहता हू, और उसके अनुसार मस्तक (आदि पाचो अंग) झुका (और मिला) कर मैं वंदन करता हू ।

४ सुगुरु को सुखशाता-पृच्छा ।

इच्छाकारी सुहराई (सुह देवसि) सुख-तप शरीर निराबाध सुख-संयम-यात्रा निर्वहते हो जी । स्वामिन् ! शाता है जी ? आहार पानी का लाभ देना जी ।

---

१ यहा गुरु उत्तर देवे कि—देव गुरु पसाय । २ वर्तमान योग ।

शब्दार्थ

इच्छकार—हे गुरु महाराज ! आपकी इच्छा हो तो मैं पूछूं ।

सुह-राई—आपकी रात सुखपूर्वक बीती होगी ?

(सुह-देवसि)—आपका दिन सुख-पूर्वक बीता होगा ?

सुख-तप—आपकी तपश्चर्या सुख-पूर्वक पूर्ण हुई होगी ?

शरीर-निराबाध—आपका शरीर बाधा-पीड़ा-रहित होगा ?

सुख-संयम-यात्रा निर्वहते हो जी ? आप चरित्र का पालन सुखपूर्वक कर रहे होंगे ?

स्वामिन्—हे गुरु महाराज !

शाता है जी—शांति है जी ?

नोट—आगे अर्थ स्पष्ट है ।

भावार्थ—[शिष्य गुरु को इस प्रकार सुखशाता पूछता है ।

हे गुरु महाराज ! आपकी इच्छा हो तो मैं पूछूं ? आपकी रात सुखपूर्वक बीती होगी ? (आपका दिन सुखपूर्वक बीता होगा ?) आप की तपश्चर्या सुखपूर्वक पूर्ण हुई होगी ? आपके शरीर को किसी प्रकार की बाधा पीड़ा न हुई होगी ? अथवा शरीर निरोग होगा ? और इसमें आप चारित्र का पालन सुखपूर्वक कर रहे होंगे ? हे गुरु महाराज ! आपको सब प्रकार की शांति है ?

५. अब्भुट्ठिओ (गुरु-क्षामणा) सूत्र ।

इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! अब्भुट्ठिओ हं अब्भिंतर-देवसिअं खामेउं ।[1] (अब्भिंतर-राइयं खामेउं)[2]

---

१. इसके बाद गुरु कहे—खामेह । २. शाम को प्रतिक्रमण करते समय—'देवसियखामेउं' तथा प्रातःकाल को प्रतिक्रमण करते समय

इच्छं, खामेमि देवसिअं [खामेमि राइयं[2]]।

जं किंचि अपत्तिअं परपत्तिअं भत्ते, पाणे, विणए, वेआवच्चे, आलावे, सलावे, उच्चासणे, समासणे, अंतरभासाए, उवरिभासाए, जं किंचि मज्झ विणय-परिहिणं सुहुमं वा बायरं वा तुब्भे जाणह, अहं न जाणामि, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

गुरु १५, लघु १११, सर्व वर्ण १२६।

शब्दार्थ

इच्छाकारेणसंदिसह— इच्छापूर्वक आज्ञा प्रदान करें।
भगवन्—हे गुरु महाराज!
अब्भुट्ठिओ हं—मैं उपस्थित हुआ हूं।
(अब्भितर-देवसिअं—दिन में किये हुए अतिचारों को।
(अब्भितर-राइयं)—रात में किये हुए अतिचारों को।
खामेउं—खमाने के लिये। क्षमा मागने के लिये।
इच्छं—चाहता हूं। आपकी आज्ञा प्रमाण है।
खामेमि—मैं क्षमा मागता हूं— खमाता हूं।
देवसिअं—दिवस सम्बन्धी अतिचार
जं किंचि—जो कुछ
अपत्तिअं—अप्रीतिकारक
भत्ते—आहार में
पाणे—पानी में।
विणये—विनय में।
वेआवच्चे-वैयावृत्य में,सेवासुश्रूषा में
आलावे—बोलने में

'राइयं खामेउं' कहें। [2] शाम को 'खामेमि देवसिअं' प्रात काल 'खामेमि राइयं'।

संलावे—वातचीत करने मे।

उच्चासणे—(गुरु से) ऊँचे आसन पर वैठने मे। ऊँचा आसन रखने मे

समासणे—वरावर के आसन पर वैठने में।

अंतरभासाए—भापण के वीच वोलने में।

उवरिभासाए—भापण के वाद वोलने मे।

जंकिंचि—जो कोई अतिचार।

मज्झ—मुझ से।

विणय-परिहीणं—अविनय-आशातना।

सुहुमं वा वायरं वा—सूक्ष्म अथवा स्थूल।

तुब्भे जाणह, अहं न जाणामि—जिसको आप जानते हैं मैं नही जानता।

तस्स—उसका

मि—मेरे लिये

दुक्कडं—पाप

मिच्छा—मिथ्या हो

भावार्थ—हे गुरु महाराज ! आप इच्छापूर्वक आज्ञा प्रदान करो मैं दिन (रात्रि) में किये हुए अपराधो (अतिचारों) की क्षमा मांगने के लिए आपको सेवा मे उपस्थित हुआ हूं :—

आपकी आज्ञा प्रमाण है—दिन सम्वन्धी अतिचारों को (रात्रि सम्वन्धी अतिचारों को) क्षमा मांगता हूं :—

आहार मे, पानी में, विनय में, वैयावृत्य मे (सेवाशुश्रूषा में) वोलने मे, वातचीत करने में, आपसे ऊँचे आसन पर वैठने मे, समान आसन पर वैठने में, वीच में वोलने में, भापण के वाद वोलने मे, जो कुछ अप्रीतिकारक अथवा विशेष अप्रीतिकारक व्यवहार द्वारा जो कोई अतिचार लगा हो अथवा मुझ से जो कोई आपकी सूक्ष्म या स्थूल (अल्प या अधिक) अविनय-आशातना हुई हो, चाहे वे मुझे ज्ञात हो-आप न जानते हों; आप जानते हों-मैं नही जानता हूं; आप और मैं दोनों जानते हो अथवा मैं और आप दोनो न जानते हो वे मेरे सब दुष्कृत्य मिथ्या हों अर्थात् उनकी मैं माफी चाहता हूं।

मुहपत्ति तथा शरीर पडिलेहण की रीति–

६—पच्चीस बोल मुहपत्ति पडिलेहण के —

१ सूत्र अर्थ तत्त्व करी सद्दहूं
(अर्थात् श्रद्धापूर्वक हृदय में धारण करूं, यह दृष्टि पडिलेहण)
३ सम्यक्त्व-मोहनीय, मिश्र-मोहनीय, मिथ्यात्व-मोहनीय परिहरूं।
३ काम-राग, स्नेह-राग, दृष्टि-राग परिहरूं।
(ये सात बोल मुहपत्ति खोलते समय चिंतन करना)
३ सुदेव, सुगुरु, सुधर्म आदरूं।
३ कुदेव, कुगुरु, कुधर्म परिहरूं।
३ ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदरूं।
(ये नौ बोल दाहिने हाथ के पडिलेहण के समय चिंतन करना।)
३ ज्ञान-विराधना, दर्शन-विराधना, चारित्र-विराधना परिहरूं।
३ मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति आदरूं।
३ मनोदंड, वचनदंड, कायदंड, परिहरूं।
(ये नौ बोल बायें हाथ के पडिलेहण के समय चिंतन करना।

७—पच्चीस बोल शरीर पडिलेहण के—

३ हास्य, रति, अरति परिहरूं।
(ये तीन बोल बाईं भुजा पडिलेहण के समय चिंतन करना)
३ भय, शोक, दुगंछा परिहरूं।
(ये तीन बोल दाहिनी भुजा पडिलेहण के समय चिंतन करना)
३ कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या परिहरूं।
(ये तीन बोल मस्तक की पडिलेहण के समय चिंतन करना)
३ ऋद्धिगारव, रसगारव, सातागारव परिहरूं।
(ये तीन बोल मुख की पडिलेहण के समय चिंतन करना)
३ माया-शल्य, निदान-शल्य, मिथ्यात्व-शल्य परिहरूं।
(ये तीन बोल हृदय की पडिलेहण के समय चिंतन करना)

२. क्रोध, मान परिहरु ।
(ये दो बोल दाहिनी भुजा के पडिलेहण के समय चिंतन करना)
२. माया, लोभ परिहरु ।
ये दो बोल बांई भुजा के पडिलेहण के समय चिंतन करना)
३. पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय की रक्षा करु ।
(ये तीन बोल चरवले से बांये पैर पर पडिलेहण के समय चिंतन करना)
३. वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय की यत्ना करु ।
(ये तीन बोल चरवले से दाहिने पैर पर पडिलेहण के समय चिंतन करना)

(नोट) पुरुषो को ये शरीर पडिलेहण के पच्चीस बोल ही कहने चाहियें, परन्तु स्त्रियो को तीन लेश्या, तीन शल्य और चार कषाय इन दस बोलो के सिवाय पन्द्रह ही कहने चाहिये। ये सब बोल मन मे ही चिंतन करना चाहिये, बोलना नही। क्योकि सामायिक मे बोलते समय मुंहपत्ति मुख के आगे रखकर बोलना चाहिए, पर पडिलेहण करते समय मुंहपत्ति मुख के आगे नही रखी जा सकती।

८. सामायिक (करेमि भंते) सूत्र

करेमि भंते! सामाइयं, सावज्जं जोगं पच्चक्खामि। जावनियमं पज्जुवासामि, दुविहं तिविहेणं,

१. सम अर्थात् मध्यस्थभाव का, आय अर्थात् लाभ जिसमें हो उसे सामायिक कहते हैं। अथवा सम अर्थात् समान भाव-सब जीवो को मित्रवत् मानने रूप, आय—अर्थात्-लाभ जिसमे हो उसे सामायिक कहते है। अथवा-सम—समान है मोक्ष की साधना के प्रति सामर्थ्य जिनका ऐसे ज्ञान-दर्शन-चारित्र का, आय-लाभ है जिसमे उसे सामायिक कहते हैं।

मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि । तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।

शब्दार्थ

करेमि—करता हूँ	दुविहं—दो प्रकार से
भंते—हे भगवान ! हे पूज्य !	न करेमि—नहीं करूँगा
सामाइयं—सामायिक	न कारवेमि—न कराऊँगा
सावज्जं—पापवाली	भंते—हे भगवान् !
जोगं—प्रवृत्ति का, व्यापार का	तस्स—उस पापवाली प्रवृत्ति का
पच्चक्खामि—प्रत्याख्यान करता हूं, प्रतिज्ञापूर्वक छोड़ देता हूं	पडिक्कमामि—मैं प्रतिक्रमण करता हूँ, मैं निवृत्त होता हूँ
जाव—जब तक	निंदामि—(उनकी) निंदा करता हूँ
नियमं—इस नियम का	
पज्जुवासामि—पर्युपासन करता रहूंगा, मैं सेवन करता रहूंगा	गरिहामि—(और) गर्हा—गुरु की साक्षी में विशेष निन्दा करता हूँ
तिविहेणं—तीन प्रकार के (योग से)	
मणेणं—मन से	अप्पाणं—आत्मा को (उस पाप व्यापार से)
वायाए—वाणी से	
काएणं—शरीर से	वोसिरामि—हटाता हूं

भावार्थ—हे पूज्य ! मैं सामायिक व्रत ग्रहण करता हूँ । अत पाप वाली प्रवृत्ति को प्रतिज्ञापूर्वक छोड़ देता हूँ । जब तक मैं इस नियम का सेवन (पालन) करता रहूंगा तब तक मन, वाणी और शरीर इन तीन योगों से पाप व्यापार को न करूँगा, न कराऊँगा । हे भगवान् ! पूर्वकृत पाप युत वाली प्रवृत्ति से मैं निवृत्त होता हूँ, अपने हृदय में उसे बुरा समझ कर उसकी निन्दा करता हूं और आप (गुरु) के सामने विशेष रूप से निन्दा करता हूं । अब मैं अपनी आत्मा को पाप क्रिया से हटाता हूँ ।

६. इरियावहियं सूत्र

इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! इरियावहियं पडिक्कमामि[2] । इच्छं ।[3] ।

इच्छामि पडिक्कमिउं इरियावहियाए विराहणाए । गमणागमणे, पाणक्कमणे, बीयक्कमणे, हरियक्कमणे, ओसा–उत्तिंग–पणग–दग–मट्टी–मक्कडा–संताणा–संकमणे जे मे जीवा विराहिया–एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया, अभिहया, वत्तिया, लेसिया, संघाइया, संघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्दविया, ठाणाओ ठाणं संकामिया; जीवियाओ ववरोविया तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ॥

पद, २६, संपदा ७, गुरु १४, लघु १३६, सर्व वर्ण १५० ।

शब्दार्थ

भगवन्—हे भगवान् !
इच्छाकारेण—स्वेच्छा से, इच्छापूर्वक
संदिसह—आज्ञा दीजिए (जिससे)
इरियावहियं-मैं ईर्यापथिकी क्रिया का
पडिक्कमामि—प्रतिक्रमण करूँ

---

२. यहाँ गुरु 'पडिक्कमह' कहे । ३. गुरु महाराज का आदेश स्वीकार करने का यह वचन है ।

शब्दार्थ

इच्छं—चाहता हूँ, आपकी यह आज्ञा स्वीकार करता हूँ

इच्छामि—चाहता हूँ, अन्तःकरण की भावनापूर्वक प्रारम्भ करता हूँ

पडिक्कमिउं-प्रतिक्रमण करने को

इरियावहियाए—ईर्यापथ-संबंधी क्रिया से लगे हुए अतिचार में, मार्ग में चलते समय हुई जीव-विराधना का

विराहणाए—विराधना दोष

गमणागमणे—आने-जाने में

पाणक्कमणे—प्राणियों को दबाने से

बीयक्कमणे—बीजों को दबाने से

हरियक्कमणे—हरि वनस्पति को दबाने से

ओसा—ओस की बूँदों को

उत्तिंग—चींटियों के बिलों को

पणग—पाँच वर्ण की काई (नील फूल)

दग—पानी

मट्टी—मिट्टी

मक्कडा-संताणा—मकड़ी के जाले आदि को

संकमणे—गूँद व कुचल कर

जे जीवा—जो प्राणी, जो जीव

मे विराहिया—मुझ से पीड़ित-दुखित हुए हो

एगिंदिया—एक इन्द्रिय वाले जीव

बेइंदिया—दो इन्द्रिय वाले जीव

तेइंदिया—तीन इन्द्रियों वाले जीव

चउरिंदिया—चार इन्द्रियों वाले जीव

पंचिंदिया—पाँच इन्द्रियों वाले जीव

अभिहया—पाँव से मरे हों, ठोकर से मरे हों

वत्तिया—धूल से ढँके हों

लेसिया—आपस में अथवा जमीन पर मसले हों

संघाइया—इकट्ठे किये हों। परस्पर शरीर द्वारा टकराये हों।

संघट्टिया—छुआ हो

परियाविया—कष्ट पहुँचाया हो

किलामिया—थकाया हो

उद्दविया—भयभीत किया हो

ठाणाओ ठाणं—एक स्थान से दूसरे स्थान पर

संकामिया—रखा हो

जीवियाओ ववरोविया—प्राणों से रहित किया हो

तस्स—उस सब अतिचार का

मिच्छा मि दुक्कडं—पाप-दुष्कृत मेरे लिए मिथ्या हों

भावार्थ हे भगवान् ! अपनी इच्छा से ईर्यापथिकी—प्रतिक्रमण करने की मुझे आज्ञा दीजिए। [गुरु इसके प्रत्युत्तर में—'पडिक्कमह' —'प्रतिक्रमण करो' ऐसा कहे तब शिष्य कहे [—मैं चाहता हूँ; आप की यह आज्ञा स्वीकृत करता हूँ। अब मैं मार्ग मे चलते समय हुए जीव-विराधना का प्रतिक्रमण अन्त.करण की भावनापूर्वक प्रारम्भ करता हूँ।

आने-जाने मे किसी प्राणी को दबाकर, बीज को दबाकर, वनस्पति को दबाकर, ओस की बूंदो को, चींटियो के बिलो को, पाँच रंग की काई (नील फूल), कच्चा पानी, मिट्टी, कीचड़ तथा मकड़ी के जाले आदि को खुंद या कुचल कर जीव हिंसा की, जैसे—

एक इंद्रिय वाले एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय वाले, तीन इन्द्रिय वाले, चार इन्द्रिय वाले, अथवा पाँच इन्द्रिय वाले जीवो को पीडित किया हो, चोट पहुँचाई हो, धूल आदि से ढाका हो, आपस मे अथवा जमीन पर मसला हो,, इकट्ठे किये हो अथवा परस्पर शरीर द्वारा टकराये हो, छुआ हो, कष्ट पहुंचाया हो, थकाया हो, भयभीत किया हो, एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखा हो [विशेष क्या; किसी तरह से उनको] प्राणो से रहित किया हो; उन सब अतिचारों का पाप मेरे लिए निष्फल है। अर्थात् जानते-अजानते विराधना आदि से कषाय द्वारा मैंने जो पापकर्म बांधा; उसके लिए मैं हृदय से पछताता हूँ, जिससे कि कोमल परिणाम द्वारा पाप-कर्म नीरस हो जावे और मुझे उसका फल भोगना न पड़े।

१०. तस्स उत्तरी सूत्र

तस्स उत्तरी-करणेणं, पायच्छित्त-करणेणं,
विसोही-करणेणं, विसल्ली-करणेणं,
पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए, ठामि काउस्सग्गं।

पद ६, संपदा १, गुरु १०, लघु ३६, सर्व वर्ण ४६।

शब्दार्थ

तस्स—उस पाप की	विसल्लो-करणेण—शल्य रहित करने के लिए
उत्तरी-करणेण—विशेष शुद्धि के लिए	पावाण—पाप
पायच्छित्त-करणेण-प्रायश्चित करने के लिए	कम्माण—कर्मों को
	निग्घायणट्ठाए—नाश करने के लिए
विसोहिकरणेण-आत्मा के परिणामों की विशेष शुद्धि करने के लिए	काउस्सग्ग—कायोत्सग
	ठामि—मैं करता हूँ

भावार्थ—ईर्यापथिकी क्रिया से पाप-मल लगने के कारण आत्मा मलिन हुआ उसकी शुद्धि मैंने 'मिच्छा मि दुक्कड' द्वारा की है। फिर भी आत्मा के परिणाम पूर्ण शुद्ध न होने से वह अधिक निर्मल न हुआ हो तो उसको अधिक निर्मल बनाने के लिए उस पर बार-बार अच्छे संस्कार डालने चाहिए। इसके लिए प्रायश्चित करना आवश्यक है। प्रायश्चित भी परिणाम की विशुद्धि के सिवाय नहीं हो सकता, इसलिए परिणाम विशुद्धि आवश्यक हैं। परिणाम की विशुद्धता के लिए शल्यों का त्याग करना जरूरी है। शल्यों का त्याग और अन्य सब पाप कर्मों का नाश कायोत्सर्ग से ही हो सकता है इसलिए मैं कायोत्सर्ग करता हूँ।

११. अन्नत्थ ऊसणिएणं सूत्र

अन्नत्थ ऊससिएणं, नीससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं, उड्डुएणं, वाय-निसग्गेणं भमलीए पित्तमुच्छाए, सुहुमेहिं अंग-संचालेहिं, सुहुमेहिं खेल संचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठि-संचालेहिं एवमाइएहिं

आगारेहिं अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सग्गो।

जाव अरिहंताणं भगवंताणं णमुक्कारेणं न पारेमि ताव कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि ॥

पद २८, संपदा ५, गुरु १३, लघु १२७, सर्व वर्ण १४०

शब्दार्थ

अन्नत्थ–अधोलिखित अपवाद-पूर्वक

ऊससिएणं–श्वास लेने से

नीससिएणं–श्वास छोड़ने से

खासिएणं–खांसी आने से

छीएणं–छीक आने से

जंभाइएणं–जम्भाई आने से

उड्डुएणं--डकार आने से

वाय-निसग्गेणं--अधोवायु छूटने से अपान वायु सरने से

भमलीए--चक्कर आने से

पित्त-मुच्छाए--पित्त-विकार के कारण मूर्छा आने से

सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं--सूक्षम अंग संचार होने से

सुहुमेहिं अंगसचालेहिं--सूक्षम कफ तथा वायु का संचार होने से

सुहुमेहिं दिट्ठी-संचालेहिं--सूक्षम दृष्टि संचार होने से

एवमाइएहिं आगारेहिं---इत्यादि आगारों (अपवादों) के प्रकार से

अभग्गो--अभंगो (भग्न न हो)

अविराहिओ-अखंडित (खंडित नहीं)

हुज्ज--हो

मे काउस्सग्गो--मेरा कायोत्सर्ग

जाव-जहा तक, जब तक

अरिहंताणं भगवंताणं णमुक्कारेणं अरिहन्त भगवान् को नमस्कार करके

न पारेमि--पूर्ण न करूं

ताव--तब तक

कायं--शरीर को, काया को

ठाणेणं--स्थिर रखकर

मोणेणं-मौन रहकर-वाणी व्यापार सर्वथा वन्द करके

झाणेणं--ध्यान द्वारा

अप्पाणं--अपने को

वोसिरामि--पाप क्रिया से तजता हूं

भावार्थ—अब मैं कायोत्सर्ग की प्रतिज्ञा करता हूँ, उसमें नीचे आगारो (अपवादो) के सिवाय दूसरे किसी भी कारण से मैं इस कायोत्सर्ग का भग नही करूँगा। वे आगार ये हैं—श्वास लेने से, श्वास छोडने से, खाँसी आने से, छीक आने से, जम्हाई आने से, डकार आने से, अपान वायु सरने से, चक्कर आने से, पित्त-विकार के कारण, मूर्च्छा आने से, सूक्ष्म अग-सचार होने से, सूक्ष्म रीति से शरीर मे कफ तथा वायु के सचार होने से, सूक्ष्म दृष्टि-सचार (नेत्र-स्फुरण आदि) होने से (ये तथा इनके सदृश अन्य क्रियाएँ जो स्वयमेव हुआ करती है और जिनको रोकने से अशान्ति सभव है) (इनके सिवाय अग्नि स्पर्श, शरीर छेदन अथवा सम्मुख होता हुआ पचेन्द्रिय वध, चोर अथवा राजा के कारण, सर्प दश के भय से) ये कारण उपस्थित होने से जो काय-व्यापार हो उससे मेरा कायोत्सर्ग भग न हो, ऐसे ज्ञान तथा सावधानी के साथ खडा रहकर वाणी-व्यापार सर्वथा बन्द करता हूँ तथा चित्त को ध्यान मे जोडता हूँ और जबतक 'णमो अरिहताण' पद बोलकर कायोत्सर्ग पूर्ण न करूँ तब तक अपनी काया का सर्वथा त्याग करता हूँ।

१२. लोगस्स (नामस्तव) सूत्र

लोगस्स उज्जोअगरे, धम्मतित्थयरे जिणे।
अरिहते कित्तइस्स, चउवीसपि केवली ॥१॥
उसभमजिअ च वदे, सभवमभिणंदण च सुमइ च।
पउमप्पह सुपास, जिण च चदप्पहं वंदे ॥२॥
सुविहिं च पुप्फदत, सीअल-सिज्जस वासुपुज्जं च।
विमलमणत च जिण, धम्मं सति च वंदामि ॥३॥
कुंथुं अर च मल्लि वदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च।

वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च ॥४॥
एवं मए अभिथुआ, विहुयरयमला पहीणजरमरणा
चउवीसंपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥५॥
कित्तियवंदियमहिया, जे ए लोगस्सउत्तमा सिद्धा।
आरुग्गबोहिलाभं, सामाहिवरमुत्तमं दितु ॥६॥
चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा।
सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥७॥

पद २८, संपदा २८, गुरु २७, लघु २२६, सर्व वर्ण २५६

शब्दार्थ

लोगस्स--लोक में, चौदह राज लोक मे
उज्जोअगरे--उद्योत-प्रकाश करने वालो की
धम्मतित्थयरे--धर्मरूप तीर्थ की स्थापना करने वालों की
जिणे--जिनों की, राग द्वेष को जीतने वालों की
अरिहंते--अरिहंतों की, त्रिलोक-पूज्यों की
कित्तइस्सं--मैं स्तुति करूंगा
चउवीसंपि--चौवीसों
केवली--केवलज्ञानियो की
उसभं--१-श्री ऋषभदेवजी को
च--तथा
अजिअं--२-श्री अजितनाथजी को
वंदे--वन्दन करता हूं
संभवं--३-श्री संभवनाथजी को
अभिणंदणं--४-श्री अभिनन्दजी को
च--तथा
सुमइं च—५-श्री सुमतिनाथ स्वामी को तथा
पउमप्पहं—६-श्री पद्मप्रभु को
सुपासं—७-श्री सुपार्श्वनाथ को
जिणं च—तथा राग द्वेप को जीतने वाले
चंदप्पहं—८-श्री चन्द्रप्रभु को
वंदे—वन्दन करता हूं
सुविहिं च—९-श्री सुविधिनाथ

जिनका दूसरा नाम
पुप्फदत–श्री पुष्पदत है उनको
सीअल—१०-श्री शीतलनाथ को
सिज्जस—११-श्री श्रेयासनाथ को
वासुपुज्ज च—१२-श्री वासुपूज्य स्वामी को तथा
विमल—१३-श्री विमलनाथ को
अणत च—१४-श्री अनतनाथ को तथा
जिण—राग-द्वेष को जीतने वाले
धम्म—१५-श्री धर्मनाथ को
सतिच-१६-तथा श्री शातिनाथ को
वदामि—मैं वदन करता हूँ
कुथु—१७-श्री कुथुनाथ को
अर च-१८-श्री अरनाथ को तथा
मल्लि—१९-श्री मल्लिनाथ को
मुणिसुव्वय—२०-श्री मुनिसुव्रत स्वामी को
नमिजिण च—२१-श्री नमिनाथ जिनेश्वर को तथा
वदे—मैं वन्दन करता हू
रिट्ठनेमि—२२-श्री अरिष्टनेमि अथवा नेमिनाथ को
पास—२३-पार्श्वनाथ को
तह—तथा
वद्धमाण च—२४-श्री वधमान स्वामी अर्थात् महावीर स्वामी को
वदामि—मैं वदन करता हू।
एव—इस प्रकार
मए—मेरे द्वारा
अभियुआ—नाम पूर्वक स्तुति किये गये
विहुय-रय-मला—धो डाला है कर्म रज का मैल जिन्होंने
पहीण-जर-मरणा-जरा तथा मरण से मुक्त
चउवीसपि—चौबीसो
जिणवरा—जिनेश्वर देव
तित्थयरा—तीर्थङ्कर
मे—मुझ पर
पसीयतु—प्रसन्न हो
कित्तिय-वदिय-महिया—कीर्तन, वदन और पूजन किये हुए
जे ए—जो ये
लोगस्स—समस्त लोक मे
उत्तमा—उत्तम
सिद्धा—सिद्ध
आरुग्ग-बोहि-लाभ—कर्मक्षय तथा *जिन धर्म की प्राप्ति को*
समाहिवर—भाव समाधि
मुत्तम—श्रेष्ठ-उत्तम
दितु—दें, प्रदान करें

चौबीस तीर्थंकरों के लांछन आदि का विवरण

क्रमांक	लाञ्छन	शरीर-प्रमाण	वर्ण	आयुष्य
१	बैल	५०० धनुष	सुवर्ण	८४ लाख पूर्व
२	हाथी	४५० धनुष	सुवर्ण	७२ लाख पूर्व
३	घोडा	४०० धनुष	सुवर्ण	६० लाख पूर्व
४	बन्दर	३५० धनुष	सुवर्ण	५० लाख पूर्व
५	क्रौंच	३०० धनुष	सुवर्ण	४० लाख पूर्व
६	पद्म	२५० धनुष	लाल	३० लाख पूर्व
७	स्वस्तिक	२०० धनुष	सुवर्ण	२० लाख पूर्व
८	चन्द्र	१५० धनुष	सफेद	१० लाख पूर्व
९	मगर	१०० धनुष	सफेद	२ लाख पूर्व
१०	श्रीवत्स	९० धनुष	सुवर्ण	१ लाख पूर्व
११	गैंडा	८० धनुष	सुवर्ण	८४ लाख वर्ष
१२	भैंसा	७० धनुष	लाल	७२ लाख वर्ष
१३	सूअर	६० धनुष	सुवर्ण	६० लाख वर्ष
१४	बाज	५० धनुष	सुवर्ण	३० लाख वर्ष
१५	वज्र	४५ धनुष	सुवर्ण	१० लाख वर्ष
१६	हरिण	४० धनुष	सुवर्ण	१ लाख वर्ष
१७	बकरा	३५ धनुष	सुवर्ण	९५ हजार-वर्ष
१८	नन्दावर्त्त	३० धनुष	सुवर्ण	८० हजार वर्ष
१९	कुम्भ	२५ धनुष	नीला	५५ हजार वर्ष
२०	कछुआ	२० धनुष	काला	३० हजार वर्ष
२१	नीलकमल	१५ धनुष	सुवर्ण	१० हजार वर्ष
२२	शंख	१० धनुष	काला	१ हजार वर्ष
२३	साप	९ हाथ	नीला	१०० वर्ष
२४	सिंह	७ हाथ	सुवर्ण	७२ वर्ष

१३. सामायिक तथा पौषध पारने का सूत्र

भयव, दसण्णभद्दो, सुदसणो थूलिभद्द वयरो य
सफली-कय-गिहचाया, साहू एवविहा हुति ॥१॥
साहूण वदणेण नासइ पाव असकिया भावा ।
फासुप्रदाणे निज्जर अभिग्गहो नाणमाईण ॥२॥
छउमत्थो मूढमणो कित्तियमित्तपि स भरइ जीवो ।
जं च न संभरामि अहं मिच्छा मि दुक्कडं तस्स ॥३॥
जं जं मणेण चितिय असुहं वायाइ भासियं किंचि ।
असुह काएण कय मिच्छा मि दुक्कड तस्स ॥४ ॥
सामाइय पोसह सट्ठियस्स जीवस्स जाइ जो कालो ।
सो सफलो बोद्धव्वो, सेसो ससारफलहेऊ ॥५॥

शब्दार्थ

भयव - हे भगवान्, पूज्य
दसण्णभद्दो—दशार्णभद्र
सुदसणो—सुदर्शन सेठ
थूलिभद्द—स्थूलिभद्र
य—और
वयरो—वज्रस्वामी
सफलीकय—सफल किया है
गिहचाया—घर का त्याग (दीक्षा) जिन्होंने
साहू—साधु
एव विहा—इस प्रकार के
हुंति—होते हैं
साहूण—साधुओं का
वदणेण—वन्दन करने से
नासइ—नष्ट होते हैं
पाव—पाप
असकिया-भावा—शकारहित भाव से, निश्चय से
फासुअ—प्रासुक आहार आदि को
दाणे—देने से
निज्जर—निर्जरा
अभिग्गहो—अभिग्रह

नाणमाईणं—ज्ञानादि गुणों का
छउमत्थो—छद्मस्थ घाति कर्म सहित
मूढमणो—मूढ मन वाले
कित्तिय—कितना
मित्तंपि—मात्र भी
संभरइ—याद कर सकते है
जीवो—जीव
जं—जो
च—और
न—नही
संभरामि—मै स्मरण कर सकता हूँ
मिच्छामि—मेरा मिथ्या हो
दुक्कडं—पाप
तस्स—उसका
मणेण-चिंतिय—मन से चिंतन किया हो
असुहं—अशुभ
वायाइ-भासियं-वचन से बोला हो

किंचि—कुछ भी
काएण कयं—शरीर से किया हो
असुहं—अशुभ
सामाइय—सामायिक में
पोसह—पौषध मे
(देसावगासिय)-देशावकाशिक में
सठियस्स—रहे हुए
जीवस्स—जीव को
जाइ—जाता है, व्यतीत होता है
जो—जो
कालो—समय
सो—वह
सफलो—सफल
वोद्धव्वो—जानना चाहिये
सेसो—वाकी समय
संसार—संसार के
फलहेऊ—फल का कारण है

अर्थ—हे भगवान् ! दशार्णभद्र, सुदर्शन, स्थूलिभद्र और वज्र-स्वामी ने घर को त्याग साधुपन को वास्तव में सफल किया है—साधु इनके समान होते हैं ॥१॥

ऐसे साधुओं को वन्दन करने से निश्चय ही पापकर्म नष्ट होते हैं, शंका रहित भाव की प्राप्ति होती है, मुनिराज को शुद्ध आहार आदि देने से निर्जरा होती हैं तथा ज्ञान, दर्शन, चारित्र सम्वन्धी अभिग्रह की प्राप्ति होती है ॥२॥

घाती कर्म सहित छद्मस्थ मूढ मन वाला यह जीव किंचित् मात्र

स्मरण कर सकता है (सब नहीं) अत जो मुझे स्मरण है उनको तथा जो स्मरण नही हो रहे हैं वे सब मेरे दुष्कृत (पाप) मिथ्या हो अर्थात् उनके लिये मुझे बहुत पश्चात्ताप हो रहा है ॥३॥

मैंने मन से जो जो अशुभ चिंतन किया हो, वचन से जो जो अशुभ बोला हो तथा काया से जो जो अशुभ किया हो वह मेरा सब दुष्कृत मिथ्या हो ॥४॥

सामायिक मे, पौषध में अथवा देशावकाशिक मे जीव का जो समय व्यतीत होता है वह समय सफल समझना चाहिये। बाकी का समय ससारवृद्धि सबधी फल का हेतु है ॥५॥

मैंने सामायिक विधि से लिया, विधि से पूर्ण किया, विधि में कोई अविधि हुई हो तो मिच्छा मि दुक्कड।

दस मन के, दस वचन के, बारह काया के कुल बत्तीस दोषों[1] मे से जो कोई मुझे दोष लगा हो उसके लिये मिच्छामि दुक्कड।

सामायिक व्रत पालन के चार दृष्टांत

सामायिक पारने के सूत्र—मे सामायिक, पौषध आदि व्रतो मे

---

१ सामायिक के ३२ दोष —

१ मन के दस दोष—(१) शत्रु को देखकर उस पर द्वेष करना। (२) अविवेक पूर्वक चिंतन करना। (३) सूत्रपाठो के अर्थ का चिंतन न करना। (४) मन म उद्वेग धारण करना। (५) यश की इच्छा करना। (६) विनय न करना। (७) भय करना। (८) व्यापार का चिंतन करना। (९) सामायिक के फल का सदेह करना। (१०) तथा निदान-नियाणा करना अर्थात् फल की इच्छा रखकर धर्म क्रिया करना।

२ वचन के दस दोष—(१) खराब वचन बोलना। (२) हुकार करना। (३) पाप काय का आदेश देना। (४) चुगली करना। (५) कलह करना (६) क्षेमकुशल पूछना, आगत-स्वागत करना।

अनेक प्रकार के उपसर्ग आने पर भी दृढ रहनेवाले चार महापुरुषो के नामो का उल्लेख है। इन चारों का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जाता है ताकि सामायिक पौषधादि करने वालो के लिये मार्ग-दर्शन हो सके।

१. दशार्णभद्र—

यह महान् समृद्धिशाली, दृढ जैनधर्मी, दशार्णपुर का राजा था। एकदा महावीर प्रभु इस नगर के समीप पर्वत पर पधारे। वनमाली ने आकर राजा को प्रभु के पधारने के समाचार दिये। समाचार पाकर राजा के हर्ष का पारावार न रहा। उसने मन में निश्चय किया कि कल प्रात.काल ऐसी ऋद्धि-समृद्धि के साथ प्रभु को वन्दन करने जाऊँगा जिससे चक्रवर्ती तथा शक्रेन्द्र भी मात खा जावें।

प्रात:काल होते ही राजा एक उत्तम हाथी पर सवार हो अठारह हजार हाथियों, चौरासी लाख घोडो, इक्कीस हज़ार रथों, इक्यानवे करोड़पतियों, सोलह हजार ध्वजाओ, पाच मेघाडम्बर छत्रों, पाँच सौ रानियों तथा सब सामन्तों, मन्त्रियो एवं प्रजाजनों के साथ नाना

---

(७) गाली देना। (८) वालक को खेलाना। (९) विकथा करना। (१०) तथा हंसी-ठट्ठा करना।

३. काया के वारह दोष—(१) आसन-चपल-अस्थिर करना। (२) इधर-उधर देखना। (३) सावद्य कर्म करना। (४) आलस्य मरोड़ना-अंगड़ाई लेना। (५) अविनय पूर्वक वैठना। (६) दीवाल आदि का सहारा लेकर वैठना (७) शरीर से मैल उतारना। (८) खुजलाना। (९) पग पर पग चढाकर वैठना अथवा खड़ा होना। (१०) शरीर खुला करना। (११) जतुओ के उपद्रव से डरकर शरीर को ढकना। (१२) निद्रा लेना।

इस प्रकार १० मन के, १० वचन के, और १२ काया के कुल मिलाकर ३२ दोष हुए।

सामायिक मे इन दोषों का त्याग करना चाहिए।

प्रकार के नृत्यो, बाजे-गाजे सहित ठाठ-बाठ के साथ प्रभु को वन्दन करने के लिये चल पडा। रास्ते मे याचको को चादी, सोना तथा रत्नो का दान देता हुआ पवत के समीप आ पहुँचा।

हाथी से उतर कर पाच अभिगम पूवक राजा ने प्रभु को बडे भावपूवक वन्दन किया और उनके सम्मुख योग्य स्थान पर बैठ गया।

राजा को गव था कि "ऐसी समृद्धि के साथ मैंने प्रभु को वन्दन किया हैं, ऐसा वन्दन करने को चक्रवर्ती तथा शक्रेन्द्र भी समर्थवान नही हैं, अत मैं धन्य हू।"

शक्रेन्द्र ने अवधिज्ञान द्वारा यह सब वृत्तात जाना। राजा ने प्रभु को वन्दन करने की प्रशसा की परन्तु ऐसा गर्व उचित नही इसलिये इसके गर्व को दूर करना मेरा कतव्य है, ऐसा सोचकर इन्द्र ने अपने सब परिवार तथा अपार ऋद्धि-समृद्धि के साथ आकर प्रभु को वन्दन किया। इन्द्र की समृद्धि को देखकर दशार्णभद्र का गव चकनाचूर हो गया।

गव के चकनाचूर होते ही उसे अपने दुश्चितन पर बहुत पश्चाताप हुआ। उत्कट वैराग्य पाकर सब ऋद्धि-समृद्धि को तृणवत् त्यागकर तत्काल सवविरति रूप सामायिक व्रत ग्रहण कर मुनि दीक्षा ले ली।

यह देखकर शक्रेन्द्र ने दशार्णभद्र मुनि को वन्दन कर उनकी भूरि भूरि प्रशसा की।

'हे महामुने! प्रभु को अद्भुत रूप से वन्दन करने की आपने जो प्रतिज्ञा की थी वह सत्य हुई है, क्योकि मैं भी इस प्रकार चारित्र लेकर वन्दन करने मे असमर्थ हू।'

ऐसी स्तुति कर इन्द्र अपने स्थान पर चला गया और दशार्णभद्र राजर्षि ने शुद्ध चारित्र पालकर अन्त में मोक्ष प्राप्त किया।

२ सुदर्शन सेठ—

राजा दधिवाहन के राज्यकाल मे चपापुरी मे अर्हद्दास सेठ रहता

था उसकी पत्नी का नाम अर्हद्दासी था। दोनो दृढ़ जैनधर्मी थे। इनके एक पुत्र था उसका नाम सुदर्शन था। सुदर्शन की पत्नी मनोरमा थी। ये दोनों सम्यक्त्व सहित बारह व्रतधारी दृढ़ श्रावक थे।

कपिला नामक एक स्त्री जो सुदर्शन के मित्र की पत्नी थी, सुदर्शन पर मोहित हो गयी। इसने कपट से सुदर्शन को एकान्त में बुलाकर अपने साथ विषयभोग भोगने के लिये अत्यन्त आग्रह किया। सुदर्शन ने अपने आपको नपुंसक बतलाकर उससे पीछा छुड़ाया।

एकदा सुदर्शन सेठ के अत्यन्त सुन्दर छः पुत्रों को राजमहल के पास से जाते हुए देखकर कपिला ने राजा की अभया नामक रानी से पूछा कि ये अत्यन्त रूपवान बालक किसके हैं? अभया ने उत्तर दिया, "ये सुदर्शन सेठ के पुत्र हैं।" कपिला ने कहा—"वह तो अपने आप को नपुंसक कहता है।" अतः यदि तुम उसे अपने वश में करलो तो तुम्हारी चतुराई जानूं।

रानी ने कहा—"यह कौनसी बड़ी बात है, मैं इसे अपने वश में अवश्य कर दिखलाऊँगी।"

एक दिन सारे नगरवासी उत्सव मनाने के लिये उद्यान में गये पर अभया रानी सिरदर्द का बहाना बनाकर अपने महल मे रही। पर्व दिन होने के कारण इस दिन सेठ सुदर्शन अपने घर पर पौषध में कायोत्सर्ग-ध्यान में तल्लीन थे। रानी ने उसे अपने अन्तःपुर मे ले आने के लिये एक उपाय किया। इसने अपनी पंडिता नाम की दासी को कहा कि रथ मे यक्ष की मूर्ति बिठलाकर देवमन्दिर में ले जाओ और उस मूर्ति को मन्दिर मे रखकर खाली रथ में सेठ को उठवा कर मेरे पास ले आओ।

पौषध मे रहे हुए कायोत्सर्ग में तल्लीन सेठ को रथ में डालकर दासी अन्तःपुर में ले आई। रानी ने अनेक चेष्टाएं की, अनेक प्रलोभन दिये, धमकियाँ भी दी पर सेठ अपने व्रत में दृढ़ रहे। जब रानी का कोई वश

न चला तो उसने जोर जोर से चिल्लाना शुरू कर दिया—"पकड़ो—पकड़ो इस लम्पट धूर्त सुदर्शन को, मुझे अकेला देखकर मेरी इज्जत लूटने के लिये मेरे महल में घुस आया है।"

सेठ को राजपुरुषों ने पकड़कर राजा के दरबार में हाजिर किया। सेठ कायोत्सर्ग में ध्यानारूढ़ हो गये। राजा ने सेठ को मृत्युदंड दिया और शूली पर चढ़ाने के लिये जल्लादों को हुक्म दे दिया।

सेठ की पत्नी मनोरमा को जब पति पर कलंक लगाये जाने तथा मृत्युदंड के समाचार मिले तो वह अपने पति के मंगल के लिये और कलंक की मुक्ति के लिये कायोत्सर्ग में ध्यानारूढ़ हो गयी। सेठ को शूली पर चढ़ा दिया गया। शासनदेव ने शूली को सिंहासन के रूप में बदल दिया। राजा ने चमत्कृत होकर सेठ से क्षमा मांगी। सेठ के चारित्र की सर्वत्र मुक्तकंठ से प्रशंसा होने लगी। सुदर्शन सेठ तथा मनोरमा ने सर्व विरति सामायिक रूप दीक्षा ग्रहण कर ली और निरतिचार चारित्र का पालन करते हुए अन्त में मोक्षगामी हुए।

३ स्थूलिभद्र—

ये नवमें नन्दराजा के मंत्री शकडाल के पुत्र थे इनके सात बहनें तथा श्रीयक नाम का एक छोटा भाई था।

युवा होने पर कोशा वेश्या के यहाँ कला सीखने के लिये गये और उस पर आसक्त हो गये वेश्या भी इन पर अत्यन्त रागवती थी। इस तरह वहाँ रहते बारह वर्ष बीत गये।

राज्य खटपट के कारण मंत्री शकडाल की मृत्यु हो गयी। नन्द ने श्रीयक को मन्त्री बनाना चाहा पर उसने इनकार कर दिया और अपने बड़े भाई स्थूलिभद्र को मन्त्री बनाने के लिये कहा। राजा ने स्थूलिभद्र को बुलाकर मन्त्री पद स्वीकार करने को कहा। इस राजकीय खट-पट में पड़ने के बदले त्यागी जीवन स्वीकार कर स्व-पर कल्याण करने का मन में निश्चय किया और सम्भूतिविजय आचार्य से सर्वविरति रूप

सामायिक व्रत लेकर मुनि दीक्षा ग्रहण करली और संयम एवं शास्त्राभ्यास में सतत तल्लीन रहने लगे।

एकदा चातुर्मास समीप आने पर स्थूलिभद्र मुनि ने कोशा वैश्या की चित्रशाला मे चातुर्मास करने की अपने गुरु से आज्ञा मांगी। गुरु ने संयम में दृढ रहने की शिक्षा देकर वहां चातुर्मास करने की आज्ञा दे दी।

कोशा ने अपने पूर्व परिचित अत्यन्त प्रिय स्थूलभद्र कुमार को मुनि वेश मे आता देख सहर्ष पुलकित चित्त से अपूर्व स्वागत तथा आदर-सत्कार किया और सेवा के लिये पूछा। उन्होंने धर्मलाभ पूर्वक चित्रशाला में चातुर्मास रहने की आज्ञा माँगी। वैश्या ने सहर्ष अनुमति दे दी। आज्ञा प्राप्त होने पर मुनि ने वहाँ चातुर्मास किया।

वैश्या ने सोचा—संयम न पाल सकने के कारण स्थूलिभद्र वापिस मेरे पास आये है, अभी ये चुप है पर कुछ दिनों बाद अपने आप मुझसे संसार सुख भोगने के लिये कहेंगे। परन्तु वैश्या की सब आशाएँ मिट्टी में मिल गईं। मुनि तो यहाँ रहते हुए संयम को दृढतापूर्वक पालने लगे। अन्त में वैश्या ने इन्हें फुसलाने के लिये--अपने जाल में फसाने के लिये नाना प्रकार के प्रलोभन देने शुरू कर दिये। कला, होशियारी चतुराई तथा चालाकी आदि में कोई कसर न उठा रखी पर महामुनि टस से मस न हुए। वैश्या चरणो मे पड़कर गिडगिड़ाई, फूट फूटकर रोई, पर मुनि संयम से विचलित न हुए और दृढ़ता पूर्वक मुनिधर्म का पालन किया। अन्त में वैश्या को उपदेश देकर दुराचार से छुड़ाया और श्राविका धर्म मे दृढ किया। चातुर्मास समाप्त होने पर गुरु के पास वापिस आये। गुरु ने इनके संयम मे दृढ रहने की भूरी-भूरी प्रशंसा की।

चौदह पूर्वधर सुधर्मास्वामी के पास रहकर स्थूलिभद्र ने दो वस्तु कम दस पूर्व का अर्थ सहित अभ्यास किया और चार पूर्व तथा दो वस्तु अर्थ विना मूल सीखे। यह अन्तिम चौदह पूर्वधर हुए। अनुक्रम से आचार्य

पद पाकर अनेक वर्षों तक भव्यजीवों को बोध देते हुए अन्त में मृत्यु पाकर सौधर्म देवलोक में देव हुए।

वज्रस्वामी—

आप धनगिरि तथा सुनन्दा के पुत्र थे। अभी आप गर्भ में ही थे कि आपके पिता ने सिंहगिरि गुरु के पास दीक्षा ग्रहण करली। आपको जन्म लेने के तुरन्त बाद जातिस्मरण ज्ञान हो गया। इस ज्ञान से पिता की दीक्षा का वृतान्त जानकर अपना तथा पिता का पूर्वभव देखा जिससे आपको वैराग्य हो गया। अपनी माता के मोह को दूर करने के लिए आपने रात दिन रोना प्रारम्भ कर दिया। इनके सदा रोते रहने से तंग आकर माता ने एकदा अपने घर पर गोचरी के लिए आये हुए धनगिरि मुनि को पुत्र सौंप दिया। मुनि ने भी पाँच जनों की साक्षी में इन्हें ग्रहण कर लिया और पालन-पोषण के लिये एक दृढ जैनधर्मी श्राविका को दे दिया। आठ वर्ष की आयु में इन्होंने वैराग्यपूर्ण सर्वविरति रूप सामायिक लेकर दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा लेने से पहले ही आपने पदानुसारिणी लब्धि से ग्यारह अंग कण्ठस्थ कर लिये थे। बाद में भद्रगुप्ताचार्य से दसपूर्व का अभ्यास किया। पूर्वभव के मित्र जृंभकदेव ने आपके सत्त्व की परीक्षा करके आकाशगामिनी विद्या तथा वैक्रीय लब्धि दी। अपने व्रत का दृढ़तापूर्वक पालन करते हुए जिनशासन की प्रभावना की। बारह वर्षीय दुष्काल पड़ने के कारण निर्दोष आहार प्राप्ति सुलभ न होने से अनशन कर आप स्वर्ग पधारे। आप अन्तिम दशपूर्वधर थे।

१४. जयउ सामिय चैत्यवन्दन

जयउ सामिय जयउ सामिय रिसह सत्तुंजि,
उज्जिंति पहु नेमिजिण, जयउ वीर सच्चउरिमंडण,
भरुअच्छहिं मुणिसुव्वय मुहरि पास। दुह-दुरिअखंडण

अवर विदेहिं तित्थयरा, चिहुं दिसि विदिसि जिं के वि,
तीआणागयसंपइअ, वंदु जिण सव्वेवि ॥ १ ॥

कम्मभूमिहिं कम्मभूमिहिं पढमसंघयणि,
उक्कोसय सत्तरिसय जिणवराण विहरंत लब्भइ;
नवकोडिहिं केवलीण, कोडिसहस्स नव साहु गम्मइ।
संपइ जिणवर वीस, मुणि बिहुँ कोडिहिं वरनाण,
समणह कोडिसहस्स दुअ, थुणिज्जइ निच्च विहाणि॥२॥

सत्ताणवइ सहस्सा, लक्खा छप्पन्न अट्ठकोडीओ।
चउसय छायासीया, तिअलोए चेइए वंदे ॥ ३ ॥
वंदे नवकोडिसयं, पणवीसं कोडि लक्ख तेवन्ना।
अट्ठावीस सहस्सा, चउसय अट्ठासिया पडिमा ॥४॥

शब्दार्थ

जयउ सामिय—हे स्वामी ! जय हो
सत्तुंजि—शत्रुंजय गिरि पर
रिसह—श्री ऋषभदेव
उज्जिंति—श्री गिरनार पर्वत पर
पहु नेमि जिण—हे प्रभो नेमिजिन
जयउ—आपकी जय हो
सच्चउरि मंडल—साचोर नगर के मंडनरूप
वीर—हे महावीर स्वामी

भरुअच्छहिं मुणिसुव्वय—भरुच में विराजित मुनिसुव्रत प्रभो
मुहरि पास—टिंटोई गाँव में विराजित हे पार्श्वनाथ प्रभो
दुह दुरिअ खंडण—दुःख और पाप का नाश करने वाले
अवर—अन्य (तीर्थङ्कर)

विदेहि—महाविदेह क्षेत्र मे
तित्थयरा—तीर्थङ्कर
चिहुं दिसी विदिसि-चारो दिशाओ और विदिशाओ मे
जि के वि—जो कोई भी
तीआणागय सपइअ-अतीत-अनागत और साम्प्रतिक—भूत, भविष्यत तथा वर्तमान काल मे प्रादुर्भूत
वदु जिण सव्वेवि—मैं उन सब जिनो को वदन करता हूँ
कम्मभूमिहिं—कर्मभूमियो मे
पढम सघयणि—प्रथम सहननवाले, वज्र-ऋषभ-नाराच-सघयण वाले। सघयण-हड्डियो की विशिष्ट रचना
उक्कोसय—अधिक से अधिक
सत्तरिसय—एक सौ सत्तर (१७०)
जिणवराण—जिनेश्वरो की सख्या
विहरत—विचरण करते हुए विद्यमान
लब्भइ—प्राप्त होती हैं।
नवकोडिहिं—नौ करोड
केवलीण—केवलियो की, सामान्य केवलियों की
कोडिसहस्स नव—नौ हजार करोड (नब्वे अरब)
साहु गम्मइ—साधु होते हैं
सपइ—वर्तमानकाल मे
जिनवर—तीर्थङ्कर
वीस—वीस
मुणि—मुनि
बिहु कोडिहिं—दो करोड
वरनाण—केवल ज्ञानी
समणह—श्रमणो की (सख्या)
कोडि सहस्स दुअ—दो हजार करोड (वीस अरब)
थुणिज्जइ—स्तवन किया जाता है
निच्च—नित्य
विहाणि—प्रात काल मे
सत्ताणवइ सहस्सा-सत्ताणवें हजार
लक्खा छप्पन्न—छप्पन लाख
अट्ठ-कोडीओ—आठ करोड
चउसय—चार सौ
छायासीया—छियासी
तिअलोए—तीन लोक में
चेइए—चैत्य जिन मदिर हैं
वदे—वन्दन करता हूँ
नव—नौ
कोडिहिं—करोड
सय—सौ
पणवीस कोडि—पच्चीस करोड
लक्ख तेवन्ना—तिरेपन लाख

अट्ठावीस सहस्सा-अट्ठाइस हजार | पडिमा—प्रतिमाओं को
अट्ठासिया—अट्ठासी

भावार्थ—शत्रुंजय पर्वत पर प्रतिष्ठित हे श्री ऋषभदेव प्रभो ! आपकी जय हो ! श्री गिरनार पर्वत पर विराजमान हे नेमिनाथ भगवान् ! आपकी जय हो ! साचोर नगर के भूषणरूप हे श्री महावीर प्रभो ! आपकी जय हो ! भरूच मे रहे हुए हे मुनिसुव्रत स्वामी ! आपकी जय हो ! टिंटोई गांव अथवा मथुरा मे विराजित हे पार्श्वनाथ प्रभो ! आपकी जय हो ! ये पांचों जिनेश्वर दुःखों तथा पापो का नाश करने वाले है। पांचों महाविदेह में विद्यमान जो तीर्थङ्कर हैं एवं चार दिशाओं तथा चारों विदिशाओ मे अतीतकाल, अनागतकाल और वर्तमान काल में जो कोई भी तीर्थङ्कर है, उन सबको मैं वन्दन करता हूं।

सब कर्मभूमियों में (जिन भूमियो मे असि, मसी कृषिरूप कर्म होते हैं) ऐसे पाँच भरत, पाँच ऐरावत और पाँच महाविदेह क्षेत्र में जहां प्रत्येक मे बत्तीस-बत्तीस विजय होने से कुल १६० विजय हैं; कुल मिलाकर ५ भरत, ५ ऐरवत तथा पाच महाविदेहो के १६० विजय कुल १७० कर्मभूमियो में) प्रथम सघयण (वज्र-ऋषभ-नाराच-सहनन) वाले अधिक से अधिय १७० तीर्थङ्करो की सख्या पाई जाती है। सामान्य केवलियो की अधिक से अधिक सख्या नौ करोड (९००००००) की होती है और सामान्य साधुओं की संख्या अधिक से अधिक नौ हजार करोड अर्थात् नब्बे अरब (९०००००००००) की होती है वर्तमान काल मे सर्वसंख्या जघन्य है अर्थात् सीमंधर स्वामी आदि बीस तीर्थङ्कर (प्रत्येक महाविदेह के ८वें, ९वे, २४वे २५वे, विजय मे एक-एक तीर्थङ्कर) पाँचो महाविदेह क्षेत्रों मे विचरते हैं। सामान्य केवलज्ञानी मुनियो की संख्या दो करोड़ (२००००००) तथा सामान्य साधुओं

की सख्या दो हजार करोड़ अर्थात् बीस अरब (२००००००००००) है। इन सबकी निरन्तर प्रात काल में स्तुति करता हू।

ऊर्ध्व लोक, तिरछे लोक तथा अधो लोक इन तीनो लोको मे कुल आठ करोड छप्पन लाख सत्तागर्वे हजार चार सौ छियासी (८५६९७४८६) शाश्वत चैत्य हैं उनको मे वन्दना करता हू।

उपर्युक्त सब चैत्यो मे विराजमान नो अरब पच्चीस करोड, तिरेपन लाख, अट्ठाईस हजार, चार सौ अट्ठासी (९२५५३२८४८८) शाश्वत जिन प्रतिमाओ को मैं वन्दना करता हूं।

१५. जं किंचि सूत्र

जं किंचि नाम तित्थं, सग्गे पायालि माणुसे लोए।
जाइ जिण-बिंबाइ, ताइ सव्वाइं वंदामि ॥१॥

शब्दार्थ

जं किंचि—जो कोई	जाइ—जो
नाम तित्थ—नाम मात्र से भी प्रसिद्ध ऐसे तीर्थ हैं	जिण बिंबाई—जिन बिम्ब हैं
सग्गे—स्वर्ग मे	ताइ—उन
पायालि—पाताल मे	सव्वाइ—सब को
माणुसे लोए—मनुष्य लोक मे	वंदामि—मैं वदन करता हू

भावार्थ—[सामान्य जिन तीर्थों तथा जिन बिम्बो को नमस्कार] स्वर्ग-लोक, पाताल-लोक और मनुष्यलोक मे [ऊर्ध्व, अधो तथा मध्यलोक मे] जो कोई नाम मात्र से भी तीर्थ हैं तथा उनमे जो प्रतिमाएं विराजमान हैं, उन सबको मैं वन्दन करता हूं।

१६-नमुत्थुणं-शक्रस्तव सूत्र

नमुत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं ॥१॥
आइगराणं तित्थयराणं, सयं-सबुद्धाणं ॥२॥
पुरिसुत्तमाणं पुरिस-सीहाणं; पुरिस-वर-पुण्डरीआणं, पुरिस-वर-गंधहत्थीणं ॥३॥
लोगुत्तमाणं लोग-नाहाणं लोग-हिआणं लोग-पई-वाणं लोग-पज्जोअगराणं ॥४॥
अभय-दयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरण-दयाणं बोहि-दयाणं ॥५॥
धम्म-दयाणं धम्म-देसयाणं धम्म-नायगाणं, धम्म-सारहीणं, धम्म-वरचाउरंत चक्कवट्टीणं ॥६॥
अप्पडिहय-वर-नाण-दंसण-धराणं विअट्ट-छउमाणं॥७
जिणाणं, जावयाणं, तिन्नाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहयाणं मुत्ताणं मोअगाणं ॥८॥
सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं सिव-मयल-मरुअ-मणंत-मक्खय-मव्वावाह-मपुणरावित्ति-सिद्धिगइ नामधेयं ठाणं संपत्ताणं । नमो जिणाणं जिअ भयाणं ॥९॥
जे अ अईआ सिद्धा, जे अ भविस्संतिणागए काले ।
संपइ अ वट्टमाणा,, सव्वे तिविहेण वंदामि ॥१०॥

पद ३३, संपदा ९, गाथा १, गुरु ३३, लघु २६४ सर्व वर्ण २९७

शब्दार्थ

नमुत्थुणं—नमस्कार हो
अरिहंताणं भगवंताणं—अरिहंत भगवंतों को
आइगराणं—द्वादशांगी (श्रुतधर्म) की आदि करने वालों को
तित्थयराणं—तीर्थंकरों को, चतुर्विध संघ की स्थापना करने वालों को
सय-संबुद्धाणं—स्वयं बोध प्राप्त किये हुओं को
पुरिसुत्तमाणं—पुरुषों में ज्ञानादि गुणों से उत्तमों को
पुरिस-सीहाणं—पुरुषों में सिंह समान निर्भयों को
पुरिस-वर-पुंडरिआणं—पुरुषों में उत्तम श्वेतकमल के समान निर्लेपों को
पुरिस-वर-गंधहत्थीणं—पुरुषों में सात प्रकार की ईतियाँ दूर करने में सर्वश्रेष्ठ गंधहस्ति सदृश को।
लोगुत्तमाणं—लोक में उत्तमों को
लोग-नाहाणं—लोक के नाथों को
लोग-हियाणं—लोक का हित करने वालों को
लोग-पईवाणं—लोक में दीपक समान वालों को
लोग-पज्जोअगराणं—लोक में अतिशय प्रकाश करने वालों को
अभय-दयाणं—अभय प्रदान करने वालों को
चक्खु-दयाणं—श्रुतरूपी चक्षु देने वालों को
मग्ग-दयाणं—धर्म का मार्ग दिखलाने वालों को
सरण-दयाणं—शरण देने वालों को
बोहि-दयाणं—सम्यक्त्व देने वालों को
धम्म-दयाणं—धर्म का स्वरूप समझाने वालों को
धम्म-देसयाणं—धर्म का उपदेश देने वालों को
धम्म-नायगाणं—धर्म के नायकों को
धम्म सारहीणं—धर्म – रथ को चलाने में कुशल सारथियों को
धम्म-वर-चाउरंत-चक्कवट्टीणं—धर्मरूपी श्रेष्ठ चतुरन्त चक्र धारण करने वालों को, चार गतियों का नाश करने वाले तथा धर्मचक्र के प्रवर्तक

उत्तम चक्रवर्तियो को

अप्पडिहय-वर-नाण-दंसण-धराणं- जो नष्ट न हो ऐसे श्रेष्ठ केवल ज्ञान तथा केवल दर्शन को धारण करने वालो को

विअट्ट-छउमाणं—घाती कर्मों से रहित होने से जिनकी छद्मस्थावस्था चली गई है उन को छद्मस्थता से रहितो को

जिणाणं जावयाणं—स्वय राग-द्वेष जीतने वालो को और दूसरो को राग-द्वेष जिताने वालो को। जो स्वयं जिन बने तथा दूसरो को भी जिन बनाने वालो को

तिन्नाण तारयाणं—स्वय संसार समुद्र से पार हो गये तथा दूसरो को भी पार पहुचाने वालो को

बुद्धाणं बोहयाणं—स्वय बुद्ध तथा दूसरो को भी बोध देने वालो को

मुत्ताणं-मोअगाणं—स्वय मुक्त है और दूसरो को मुक्त कराने वालो को

सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं— सर्वज्ञो को सर्व दर्शियो को

सिव—शिव, उपद्रवो से रहित

मयल अचल, स्थिर, निश्चल

मरुअ—रोग रहित, व्याधि और वेदना रहित

मणन्त—अन्त रहित

मक्खय—क्षय रहित

मव्वाबाह—कर्म-जन्य बाधा पीडाओ से रहित

मपुणरावित्ति—जहाँ जाने के बाद वापस आना नही रहता ऐसा

सिद्धिगइ-नामधेयं—सिद्धि गति नाम वाले

ठाणं—स्थान को, मोक्ष को

संपत्ताणं—प्राप्त किये हुओ को

नमो—नमस्कार हो

जिणाणं—जिनों को

जिअ-भयाणं—भय जीतने वालो को

जे—जो

अ—और

अईआ—भूतकाल में, अतीतकाल में

सिद्धा—सिद्ध हए है

भविस्संति—होगे

अणागए—भविष्य

काले—काल में

संपइ—वर्तमान काल में

अ—तथा

वट्टमाणा—विद्यमान है

सव्वे—उन सब को

तिविहेण—त्रिविध, मन-वचन-काया से

वंदामि—मैं वंदन करता हूं

भावार्थ—नमस्कार हो अरिहंत भगवन्तों को—१

श्रुतधर्म (द्वादशांगी) की आदि करने वालो को, चतुर्विध संघ की स्थापना करने वालो को, अपने आप बोध प्राप्त किये हुओं को २

अरिहंत भगवान के चौंतीस अतिशय इस प्रकार हैं।

१ शरीर अनन्त रूपवाला, सुगंधीयुक्त, रोगरहित, पसीना तथा मल रहित होता है।

२ रुधिर तथा मांस गाय के दूध समान सफेद और दुर्गंध रहित होता है।

३ आहार और निहार चर्मचक्षु द्वारा दिखलाई नहीं पड़ता।

४ श्वासोच्छ्वास कमल जैसा सुगंधित होता है।

(ये चार अतिशय जन्म से होते हैं—इसलिये इन्हें सहजातिशय कहते हैं।)

५ योजन प्रमाण समवसरण की भूमि में कोड़ाकोड़ी देव, मनुष्य तथा तिर्यंच बाधारहित समा जाते हैं।

६ चारो दिशाओ में पच्चीस पच्चीस योजन तक सब प्राणियों के सब प्रकार के रोग शान्त हो जाते हैं तथा नये रोग होते नहीं हैं।

७ सब प्राणियो का वैर-भाव नाश हो जाता है।

८ ईति अर्थात् धान्यादि को नाश करने वाले जीवों की उत्पत्ति नहीं होती।

९ मरकी-महामारी नहीं होती।

१० अतिवृष्टि नहीं होती।

११ अनावृष्टि नहीं होती।

१२ दुष्काल-दुर्भिक्ष नहीं होता।

१३ स्वचक्र तथा परचक्र का भय नहीं होता।

१४ भगवान की योजन गामिनी वाणी देव, मनुष्य तथा तिर्यंच सब अपनी-अपनी भाषा में समझते हैं।

पुरुषों में ज्ञानादि गुणों से उत्तमों को, पुरुषों में सिंह समान निर्भयों को, श्वेत कमल के समान निर्लेपो को, तथा सात प्रकार की ईतियों का दूर करने में सर्वश्रेष्ठ गन्धहस्ती के समान प्रभावशालियो को—३

(वाणी के पैंतीस गुण नवकार मंत्र की टिप्पणी में दे आये हैं वहां से देखे।)

१५ सूर्य से वारह गुणा तेजवाला भामंडल होता है।

(५ से १५ तक के ११ अतिशय जब केवलज्ञान होता है तब पैदा होते हैं। ये कर्मक्षयजातिशय कहलाते हैं। ६ से १२ तक सात रोगादि उपद्रव भगवान् विहार करते हो तब भी पच्चीस पच्चीस योजन तक नही होते)

१६. आकाश मे धर्मचक्र चलता है।

१७. बारह जोड़ी-चौवीस चामर अपने आप वींजते हैं।

१८. पादपीठ सहित स्फटिक रत्न का उज्जवल सिंहासन होता है।

१९. हरेक दिशा मे उपरोपरी तीन-तीन छत्र होते है।

२०. रत्नमय धर्मध्वज होती है (यह इन्द्रध्वज भी कहलाता है।)

२१. नौ स्वर्ण कमलो पर पग रख कर भगवन्त चलते हैं। इनमें दो पर पग रखते हैं तथा सात पीछे रहते हैं। इनमें से अनुक्रम से दो-दो आगे आते जाते है।

२२. समवसरण के मणि, स्वर्ण तथा चाँदी के तीन कोट होते हैं।

३२. प्रभु चार मुखो से देशना देते है। प्रभु स्वयं पूर्वाभिमुख विराजते हैं, बाकी के तीन दिशाओं में व्यंतर देव प्रभु के तीन प्रतिबिंब (मूर्तियां) बनाकर प्रत्येक दिशा मे एक-एक विराजमान करते हैं।

२४. भगवान् के शरीर से बारह गुणा अशोक वृक्ष होता है। यह छत्र, घंट तथा पताकाओ से युक्त होता है।

२५. मार्ग मे जाते हुए विहार भूमि में कांटे अधोमुख होते हैं।

२६. चलते समय सब वृक्ष झुककर प्रणाम करते हैं।

२७. चलते समय आकाश मे देव दुन्दुभि बजती है।

२८. योजन तक वायु अनुकूल बहती हैं।

लोक में उत्तमों को, लोक के स्वामियों को, लोक के हितकारियों को, लोक के प्रदीपों को, और लोक में अतिशय प्रकाश करने वालों को–४

अभय प्रदान करने वालों को, श्रुतरूपी नेत्रों को दान करने वालों को, धर्ममार्ग दिखलाने वालों को, शरण देने वालों को और बोधिबीज-सम्यक्त्व देने वालों को–५

धर्म का स्वरूप समझाने वालों को, धर्म का उपदेश देने वालों को, धर्म के नेताओं को—नायकों को, धर्मरूपी रथ को चलाने में दक्ष सारथियों को, तथा चार गति का नाश करने वालों और धर्म चक्र के प्रवर्तक उत्तम चक्रवर्तियों को–६

नष्ट न होने वाले केवलज्ञान, केवलदर्शन धारण करने वालों को, घातीकर्मों के नाश करने से छद्मस्थावस्था रहितों को–७

स्वयं रागद्वेष को जीतने तथा दूसरों को संसार समुद्र से तिराने वालों को, स्वयंबुद्धों तथा दूसरों को भी बोध देनेवालों को, स्वयं मुक्त होने वालों तथा दूसरों को भी मुक्ति दिलाने वालों को–८

सर्वज्ञों को, सर्वदर्शियों को, उपद्रव रहित, निश्चल, व्याधि-वेदना रहित, अन्तरहित, क्षयरहित, समस्त बाधा-पीड़ाओं से रहित और अपुनरावृत्ति (जहाँ जाने के बाद फिर संसार में वापिस आना नहीं

---

२९ मोर आदि शुभ पक्षी प्रभु को प्रदक्षिणा देकर चलते हैं।

३० सुगन्धित जल की वृष्टि होती है।

३१ जल स्थल में उत्पन्न हुए पाँच वर्ण पुष्पों की प्रभु के घुटनों तक वृष्टि होती है।

३२ संयम लेने के बाद केश दाढ़ी, मूछें बढ़ते नहीं हैं।

३३ कम से कम चार निकाय के कोटि देवता पास ही रहते हैं।

३४ छहों ऋतुएँ अनुकूल रहती हैं।

रहता) ऐसी सिद्धि गति नामक स्थान को पाये हुए ऐसे जिनों की, भय जीतने वालो को मेरा नमस्कार हो–९

(इन गाथाओं मे जब जिनदेव अर्थात् तीर्थङ्कर भगवान् देवलोक से च्यवकर माता के गर्भ मे आते है तब शक्र (इन्द्र) इस सूत्र के द्वारा उनका स्तवन करते है इसलिए शक्रस्तव कहलाता है।)

जो भूतकाल मे सिद्ध हो गये हैं, जो भविष्यकाल मे सिद्ध होने वाले है तथा जो वर्तमान काल मे सिद्ध विद्यमान है, उन सब (सिद्धो-द्रव्य तीर्थङ्करों) को मै शुद्ध मन, वचन और काया-त्रिविध योग से वन्दन करता हूं–१० (इस गाथा से द्रव्य जिन को वन्दन किया है)।

स्थापना जिन को अर्थात् सब चैत्यों को नमस्कार

१७. जावंति चेइआइं सूत्र

जावंति चेइआइं, उड्ढे अ अहे अ तिरिअ-लोए अ।
सव्वाइं त इं वंदे, इह संतो तत्थ संताइं ॥१॥

शब्दार्थ

जावंति—जितने
चेइआइं—चैत्य, जिन बिम्ब
उड्ढे—ऊर्ध्व लोक मे
अ—और
अहे—अधोलोक में
अ—तथा
तिरिअलोए—तिर्यग् लोक में
अ—एवं
सव्वाइं ताइं—उन सबको
वंदे—मैं वदन करता हूं
इह—यहां
संतो—रहता हुआ
तत्थ—वहां
सताइं—रहे हुओं को

भावार्थ—ऊर्ध्व लोक, अधोलोक और तिरछे लोक में जितने भी चैत्य-(तीर्थङ्करो की मूर्तिया) हैं, उन सबको मैं यहां रहता हुआ वन्दन करता हूं।

१८-जावंत केवि साहू सूत्र

(सर्व साधुओं को नमस्कार)

जावंत के वि साहू, भरहेरवय महाविदेहे अ ।
सव्वेसिं तेसिं पणओ, तिविहेण तिदंड-विरयाण ।।१।।

पद ४ संपदा ४, गाथा १, गुरु १, लघु ३७, सर्व वर्ण ३८

शब्दार्थ

जावंत—जो
के—कोई
वि—भी
साहू—साधु
भरहेरवय-महाविदेहे—भरत, एरवत, और महाविदेह क्षेत्र में
अ—और
सव्वेसिं तेसिं—उन सब को
पणओ—नमस्कार करता हूँ

तिविहेण—करना, कराना, और अनुमोदन करना इन तीन प्रकारों से
तिदंड—विरयाणः—जो तीन दण्ड से विराम पाये हुए हैं, उनको
(तिदंड—मन से पाप करना यह मनोदंड, वचन से पाप करना यह वचनदण्ड, काया से पाप करना कायदंड)

भावार्थ—भरत, ऐरवत और महाविदेह क्षेत्र में स्थित जो कोई भी साधु मन वचन और काया से पाप-प्रवृत्ति, करते नहीं, कराते नहीं, करते हुए का अनुमोदन करते नहीं उनको मैं नमन करता हूँ ।

१९-पंच परमेष्ठि नमस्कार

नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्य

नमो—नमस्कार हो
अर्हत् सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्व-साधुभ्य—अरिहन्त सिद्ध,

आचार्य, उपाध्याय तथा सब साधुओं को

भावार्थ—[1]सम्पूर्ण उपद्रवों को दूर करने वाला पार्श्व नाम का यक्ष जिनका सेवक है, जो कर्मों की राशि से मुक्त है, जिनके स्मरण मात्र से सर्प के विष का, नाश हो जाता है और जो मंगल तथा कल्याण के आधार है ऐसे भगवान् श्री पार्श्वनाथ को मैं वन्दन करता हूँ—१

जो मनुष्य भगवान् के नाम गर्भित 'विषधर स्फुलिंग' मन्त्र को हमेशा कंठ मे धारण करता है अर्थात् पठन-स्मरण करता है उसके प्रतिकूल ग्रह, कष्टसाध्य रोग, भयंकर मारी अथवा मारण प्रयोग से सहसा फूट निकलने वाले रोग और दुष्ट ज्वर ये सभी उपद्रव शान्त हो जाते है—२

हे भगवन् ! विषधर स्फुलिंग मंत्र की बात तो दूर रही; सिर्फ आपको किया हुआ प्रणाम भी बहुत फलो को देता है अर्थात् प्रणाम मात्र करने वाले जीव फिर वह चाहे मनुष्य गति मे हो अथवा तिर्यञ्च गति मे हो दु.ख, दरिद्रता तथा दुर्दशा को नही पाते ।—३

हे भगवन् ! चिंतामणि रत्न और कल्पवृक्ष से भी अधिक महिमा वाला तुम्हारा सम्यक्त्व पा लेने पर जीव किसी भी विघ्न के बिना सरलता से अजरामर स्थान अर्थात् मोक्ष पद को पाते हैं ।—४

---

१. यह उवसग्गहर स्तोत्र चौदह पूर्वधर आचार्य श्री भद्रबाहु स्वामी ने बनाया है। इसके बारे मे ऐसी कथा प्रचलित है कि—भद्रबाहु स्वामी का वराहमिहर नामक भाई था, वह किसी कारण से ईर्ष्यावश होकर जैन साधुपन का त्याग करके दूसरे धर्म का अनुयायी हो गया था। तब से ज्योतिषशास्त्र द्वारा अपना महत्व बतलाकर जैन साधुओं की निन्दा करने लगा। एक बार एक राजा की सभा मे भद्रबाहु ने उसकी ज्योतिषशास्त्र विषयक भूल बतलाई। इससे वह और भी अधिक जैन धर्म का द्वेषी हो गया। अन्त में मर कर वह किसी हलकी योनि का देव हुआ और वहां पर पूर्वजन्म का स्मरण करने पर जैन धर्म पर उसका द्वेष फिर भड़क उठा। इस द्वेष से अन्धा होकर उसने जैन संघ मे

हे महायशस्वी प्रभो ! इस प्रकार भक्तिपूर्ण हृदय से आपकी स्तुति करके मैं चाहता हूं कि जन्म-जन्म मे मुझको आपकी कृपा से सम्यक्त्व की प्राप्ति हो ।—५

२१. जयवीयराय सूत्र

जय वीयराय ! जग-गुरु! होउ मम तुह पभावओ भयवं!
भव-निव्वेओ मग्गा-णुस रिआ इट्ठफल-सिद्धी ॥१॥
लोग-विरुद्ध-च्चाओ, गुरुजण-पूआ परत्थकरण च ।
सुह-गुरु-जोगो तव्वयण-सेवणा आभवमखडा ॥२॥

शब्दार्थ

जय—आपकी जय हो	होउ—हो
वीयराय – हे वीतराग प्रभो !	मम—मुझे
जगगुरु—हे जगत् गुरो !	तुह – आपके

मारी का उपद्रव किया । तब उसकी शान्ति के लिये श्रीसघ की प्रार्थना पर श्री भद्रबाहु स्वामी ने सात गाथा का यह उपसर्गहर स्तोत्र बनाया । यह स्तोत्र पढने, स्मरण करने तथा सुनने मे मारी शात हो गई । ऐसा चमत्कार देखकर लोग निरन्तर इस स्तोत्र का जाप—पाठ करने लगे । इसके प्रभाव से धरणेन्द्र को प्रत्यक्ष होना पडता था । धरणेन्द्र की प्रार्थना से गुरु महाराज ने दो अन्तिम गाथाएँ निकाल दी । इस समय इस स्तोत्र की पांच गाथाएँ हैं उनका स्मरण करने से सब प्रकार के उपद्रव-उपसर्ग शात हो जाते हैं । श्री भद्रबाहु स्वामी का समय ईसा पूर्व चौथी शताब्दी है ।

२. ॐ नमिऊण पास विसहर वसह जिणफुलिंग (यह अठारह अक्षरों का विषधर स्फुलिंग नामका मन्त्र है) ।

पभावओ–प्रभाव से, सामर्थ्य से
भयवं–हे भगवन्
भव-निव्वेओ-संसार के प्रति वैराग्य
मग्गाणुसारिया–मोक्ष मार्ग मे चलने की शक्ति
इट्ठ-फल-सिद्धी-इष्ट-फल की सिद्धी
लोग-विरुद्ध-च्चाओ– लोक–निन्दा हो ऐसी प्रवृत्ति का त्याग
गुरु-जण-पूआ–गुरुजनो, धर्माचार्य, विद्या गुरु, माता पिता, भाई-बहन आदि बडे व्यक्तियो के प्रति परिपूर्ण आदर भाव।

परत्थकरणं—दूसरों का भला करने की तत्परता
च—और
सुह-गुरु-जोगो—सद्गुरु का संयोग समागम
तव्वयण-सेवणा—उस सद्गुरु के वचन का पालन
आभव—जहां तक संसार में परिभ्रमण करना पड़े वहां तक अर्थात् मुक्ति पाने तक
अखंडा—अखण्डित हों। जन्म-जन्म में मिलें।

भावार्थ—हे वीतराग प्रभो! हे जगद्गुरो! तेरी जय! हे भगवन्! आपके प्रभाव—सामर्थ्य से मुझे संसार से वैराग्य, मोक्ष मार्ग में चलने की शक्ति की प्राप्ति हो तथा वांछित फल की सिद्धि हो (जिससे मैं धर्म की आराधना सरलता से कर सकूं)।–१

हे प्रभो! (मुझे ऐसा सामर्थ्य प्राप्त हो कि जिससे) मैं ऐसा कोई भी कार्य न करूं जिनसे लोक निन्दा हो अर्थात् लोक विरुद्ध व्यवहार का त्याग करूं, धर्माचार्य, विद्यागुरु, माता-पिता, भाई-बहन आदि बड़े व्यक्तियो के प्रति बहुमान रखूं तथा सेवा करूं, दूसरों की भलाई करने मे सदा तत्पर रहूं; और हे प्रभो! मुझे सद्गुरु का समागम मिले तथा उनकी आज्ञानुसार चलने की शक्ति प्राप्त हो, ये सब बातें आपके प्रभाव से मुझे जन्म-जन्म में मिलें।—२

२२. आचार्य आदि वन्दन-सूत्र

आचार्यजी मिश्र—१, उपाध्यायजी मिश्र—२, वर्तमान गुरु (नाम लेकर) मिश्र—३, सर्व साधु मिश्र—४।

शब्दार्थ

आचार्यजी मिश्र—पूज्य आचार्यजी को वदन । उपाध्यायजी मिश्र–उपाध्यायजी को वदन । वतमान गुरुजी पूज्य मिश्र—वतमान धर्म गुरु पूज्य को वदन । सवसाधु मिश्र—सर्व साधुओं को वदन ।

भावार्थ—पूज्य आचार्य महाराज को वदन करता हू । पूज्य उपाध्यायजी महाराज को वदन करता हू । वर्तमान पूज्य धर्मगुरुजी को वदन करता हू । सब साधुओ-पूज्यो को वदन करता हूँ ।

२३—सव्वस्सवि सूत्र

इच्छाकारेण सदिसह भगवन् ! देवसिअ पडिक्कमणे ठाउ ? इच्छ सव्वस्सवि देवसिअ दुच्चितिअ दुब्भासिअ दुच्चिट्ठिअ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

इच्छाकारेण—अपनी इच्छा से
सदिसह—आज्ञा प्रदान करो
भगवन्—हे भगवन्
देवसिअ पडिक्कमणे—दैवसिक प्रतिक्रमण मे
ठाउ—स्थिर होने की
इच्छ—मैं भगवत के इस वचन को स्वीकार करता हू
सव्वस्स—सबका
वि—भी
देवसिअ—दिवस सम्बंधी, दिन मे
दुच्चितिअ—दुष्ट चितन किया हो
दुब्भासिअ—दुष्ट भाषण किया हो
दुच्चिट्ठिअ—दुष्ट चेष्टा की हो
तस्स—उनका
मिच्छा—मिथ्या हो
मि दुक्कड—मेरा दुष्कृत

भावार्थ—हे भगवन् ! स्वेच्छा से मुझे दैवसिक प्रतिक्रमण मे स्थिर होने की आज्ञा प्रदान करो । मैं भगवत के इन वचन को स्वीकार करता हूँ ।

सारे दिन म यदि मैंने कोई भी दुष्ट चिंतन किया हो, दुष्ट वचन कहा हो तथा शरीर द्वारा दुष्ट चेष्टा की हो उन सब पापो का मिथ्या दुष्कृत्य द्वारा म प्रतिक्रमण करता हूँ ।

पभावओ–प्रभाव से, सामर्थ्य से

भयवं–हे भगवन्

भव-निव्वेओ-संसार के प्रति वैराग्य

मग्गाणुसारिया–मोक्ष मार्ग मे चलने की शक्ति

इट्ठ-फल-सिद्धी-इष्ट-फल की सिद्धी

लोग-विरुद्ध-च्चाओ– लोक–निन्दा हो ऐसी प्रवृत्ति का त्याग

गुरु-जण-पूआ–गुरुजनो, धर्माचार्य, विद्या गुरु, माता पिता, भाई-बहन आदि बडे व्यक्तियो के प्रति परिपूर्ण आदर भाव।

परत्थकरणं—दूसरों का भला करने की तत्परता

च—और

सुह-गुरु-जोगो—सद्गुरु का संयोग समागम

तव्वयण-सेवणा—उन सद्गुरु के वचन का पालन

आभव—जहाँ तक संसार में परिभ्रमण करना पड़े वहाँ तक अर्थात् मुक्ति पाने तक

अखंडा—अखंडित हों। जन्म-जन्म मे मिलें।

भावार्थ—हे वीतराग प्रभो ! हे जगद्गुरो ! तेरी जय ! हे भगवन् ! आपके प्रभाव—सामर्थ्य से मुझे संसार से वैराग्य, मोक्ष मार्ग मे चलने की शक्ति की प्राप्ति हो तथा वांछित फल की सिद्धि हो (जिससे मैं धर्म की आराधना सरलता से कर सकूं)।–१

हे प्रभो ! (मुझे ऐसा सामर्थ्य प्राप्त हो कि जिससे) मैं ऐसा कोई भी कार्य न करूं जिससे लोक निन्दा हो अर्थात् लोक विरुद्ध व्यवहार का त्याग करूं, धर्माचार्य, विद्यागुरु, माता-पिता, भाई-बहन आदि बड़े व्यक्तियो के प्रति बहुमान रखूं तथा सेवा करूं, दूसरों की भलाई करने मे सदा तत्पर रहूं; और हे प्रभो ! मुझे सद्गुरु का समागम मिले तथा उनकी आज्ञानुसार चलने की शक्ति प्राप्त हो, ये सब बातें आपके प्रभाव से मुझे जन्म-जन्म मे मिलें।—२

२२. आचार्य आदि वन्दन-सूत्र

आचार्यजी मिश्र—१, उपाध्यायजी मिश्र—२, वर्तमान गुरु (नाम लेकर) मिश्र—३, सर्व साधु मिश्र—४।

शब्दार्थ

आचार्यजी मिश्र—पूज्य आचार्यजी को वदन । उपाध्यायजी मिश्र—उपाध्यायजी को वदन । वतमान गुरुजी पूज्य मिश्र—वतमान धर्म गुरु पूज्य का वदन । सवसाधु मिश्र—सर्व साधुओ को वदन ।

भावार्थ—पूज्य आचार्य महाराज को वदन करता हूँ । पूज्य उपाध्यायजी महाराज को वदन करता हूँ । वर्तमान पूज्य धर्मगुरुजी को वदन करता हूँ । सर्व साधुओ-पूज्यो को वदन करता हूँ ।

२३—सव्वस्सवि सूत्र

इच्छाकारेण सदिसह भगवन् ! देवसिअ पडिक्कमणे ठाउ ? इच्छ सव्वस्सवि देवसिअ दुच्चितिअ दुब्भासिअ दुच्चिट्ठिअ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

इच्छाकारेण—अपनी इच्छा से
सदिसह—आज्ञा प्रदान करो
भगवन्—हे भगवन्
देवसिअ पडिक्कमणे—दैवसिक प्रतिक्रमण मे
ठाउ—स्थिर होने की
इच्छ—मैं भगवन्त के इस वचन को स्वीकार करता हूँ
सव्वस्स—सबका
वि—भी
देवसिअ—दिवस सम्बधी, दिन मे
दुच्चितिअ—दुष्ट चितन किया हो
दुब्भासिअ—दुष्ट भाषण किया हो
दुच्चिट्ठिअ—दुष्ट चेष्टा की हो
तस्स—उनका
मिच्छा—मिथ्या हो
मि दुक्कड—मेरा दुष्कृत

भावार्थ—हे भगवन् ! स्वेच्छा से मुझे दैवसिक प्रतिक्रमण मे स्थिर होने की आज्ञा प्रदान करो । मैं भगवन्त के इस वचन को स्वीकार करता हूँ ।

सारे दिन मे यदि मैंने कोई भी दुष्ट चितन किया हो, दुष्ट वचन कहा हो तथा शरीर द्वारा दुष्ट चेष्टा की हो उन सब पापो का मिथ्या दुष्कृत्य द्वारा मैं प्रतिक्रमण करता हूँ ।

२४—इच्छामि ठाइउं सूत्र

इच्छामि ठाइउं काउस्सग्गं

जो मे देवसिओ अइयारो कओ, काइओ वाइओ माणसिओ, उस्सुत्तो उम्मग्गो अकप्पो अकरणिज्जो, दुज्झाओ दुव्विचिंतिओ, अणायारो अणिच्छिअव्वो असावग-पाउग्गो; नाणे दंसणे चरित्ताचरित्ते; सुए, सामाइए; तिण्हं गुत्तीणं चउण्हं कसायाणं पंचण्हमणुव्वयाणं तिण्हं गुणव्वयाणं, चउण्हं सिक्खावयाणं बारसविहस्स सावगधम्मस्स जं खंडिअं जं विराहिअं, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

गुरु २९ लघु १३८ सर्व वर्ण १६७

शब्दार्थ

इच्छामि—मैं चाहता हूँ
ठाइउं—करना
काउस्सग्गं—कायोत्सर्ग
जो—जो
मे—मेरे द्वारा
देवसिओ—दिवस सम्बन्धी
अइयारो—अतिचार
कओ—किया हो, हुआ हो
काइओ—काया द्वारा
वाइओ—वाणी द्वारा
माणसिओ—मन द्वारा
उस्सुत्तो—सूत्र के विरुद्ध भाषण करने से
उम्मग्गो—मार्ग के विरुद्ध आचरण
अकप्पो—कल्प के विरुद्ध बर्ताव
अकरणिज्जो—नहीं करने योग्य कार्य
दुज्झाओ—दुर्ध्यान से
दुव्विचिंतिओ—दुष्ट चिंतन
अणायारो—अनाचार से
अणिच्छिअव्वो—नहीं चाहने योग्य

पचण्हमणुव्वयाण-पाच अणुव्रतो का
तिण्ह गुणव्वयाण-तीन गुणव्रतो का
तिण्ह सिक्खावयाण-चार शिक्षा-व्रतो का
बारसविहस्स—बारह प्रकार के
सावगधम्मस्स—श्रावक धर्म
ज खडिअ—जो खडित हुआ हो
ज विराहिअ—जो विराधित हुआ हो
तस्स—तत्सम्बधी
मिच्छा—मिथ्या हो
मि दुक्कड—मेरा दुष्कृत

असावग-पाउग्गो—श्रावक के लिये नही करने योग्य
नाणे—ज्ञान मे
दसणे—दर्शन मे
चरित्ताचरित्ते—देश विरति चारित्र के विषय मे
सुए-श्रुत—शास्त्र के विषय मे
सामाइए—सामायिक मे
तिण्ह गुत्तीण—तीन गुप्तियो की
चउण्ह कसायाण—चार कषायो के द्वारा

भावार्थ—[पहले ऊपर कहा है कि मैं कायोत्सर्ग करूँ पर कायोत्सर्ग से पहले मैं इस प्रकार दोषो की आलोचना करता हूँ[1]]—

ज्ञान, दर्शन, देशविरति चारित्र, श्रुत धर्म तथा सामायिक के विषय मे मैंने दिन मे जो कायिक-वाचिक और मानसिक अतिचारो का सेवन किया हो उसका पाप मेरे लिये निष्फल हो। सूत्र विरुद्ध, मार्ग विरुद्ध, आचार विरुद्ध तथा कल्प विरुद्ध, नही करने योग्य दुर्ध्यान किया हो, दुष्ट चिंतन किया हो, नही आचरण करने योग्य, नही चाहने योग्य अथवा श्रावक के लिये सर्वथा अनुचित ऐसे व्यवहार से (इनमे से) जो कोई अतिचार सेवन किया हो तत्सबधी मेरा पाप मिथ्या हो।

---

१ इस सूत्र द्वारा दिन सम्बधी मन, वचन, काया से श्रावक धर्म मे किये हुए पाप की आलोचना है। इसलिये इस सूत्र को बोलते समय उपयोग रखकर स्वय सारे दिन मे जो जो काम किये हो वे सब याद करके शुद्ध अत करण से उनका पश्चाताप करने का है।

एवं चार कषाय द्वारा तीन गुप्ति संबन्धी, पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, और चार शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार के श्रावक धर्म सम्बन्धी व्रतों में से जो कोई व्रत खंडित हुआ हो अथवा जो कोई उनकी विराधना हुई हो तत्संबंधी मेरा पाप भी मिथ्या हो—निष्फल हो।

(अब मैं कायोत्सर्ग करता हूँ)

२५—अरिहंतचेइयाणं सूत्र

अरिहंतचेइयाणं करेमि काउसग्गं।

वंदण-वत्तियाए पूअण-वत्तियाए सक्कार-वत्तियाए सम्माण-वत्तियाए, बोहिलाभ-वत्तियाए, निरुवसग्ग-वत्ति-याए,

सद्धाए, मेहाए, धिईए, धारणाए, अणुप्पेहाए, वड्ढ-माणीए ठामि काउस्सग्गं ॥

सम्पदा ३, पद १५, गुरु १६, लघु ७३, सर्ववर्ण ८९

शब्दार्थ

अरिहंत-चेइयाणं—श्री अरिहंत के चैत्यों के अर्थात् प्रतिमाओं के आलम्बन से

काउस्सग्गं—कायोत्सर्ग

करेमि—मैं करता हूँ—करना चाहता हूँ

वंदण-वत्तियाए—वन्दन के निमित्त

पूअण-वत्तियाए—पूजन के निमित्त

सक्कार-वत्तियाए-सत्कार के निमित्त

सम्माण वत्तियाए—सम्मान के निमित्त

बोहि-लाभ-वत्तियाए—बोधि लाभ के निमित्त

निरुवसग्गवत्तियाए—उपसर्ग रहित स्थान के निमित्त अर्थात् मोक्ष के निमित्त

वड्ढमाणिए—वृद्धि पाती हुई।

सद्धाए–श्रद्धा से, इच्छा से, भावना से,	से, धारणा से
मेहाए–बुद्धि से, प्रज्ञा से	अणुप्पेहाए–अनुप्रेक्षा से, तत्त्व-चिंतन से
धिईए–धृति से, चित्त की स्वस्थता से	ठामि काउस्सग्ग – मैं कायोत्सर्ग करता हूँ
धारणाए–ध्येय का स्मरण करने	

भावार्थ—अरिहत प्रतिमाओ के आलम्बन से कायोत्सर्ग करने की इच्छा करता हूँ। इनके वन्दन, पूजन, सत्कार और सम्मान का अवसर मिले तथा वन्दन आदि द्वारा सम्यक्त्व तथा मोक्ष की प्राप्ति हो इस उद्देश्य से बढती हुई श्रद्धा-इच्छा-भावना, बुद्धि, धृति-चित्त की स्वस्थता, ध्येय के स्मरण-धारण और अनुप्रेक्षा से मैं कायोत्सर्ग करता हूँ।

२६–पुक्खर-वर-दीवड्ढे सूत्र

पुक्खर–वर–दीवड्ढे, धायइ–सडे अ जंबुदीवे अ।
भरहेरवय–विदेहे, धम्माइगरे नमसामि ॥१॥
तम–तिमिर–पडल–विद्धंसणस्स सुरगण–नरिंद–महियस्स।
सीमाधरस्स वंदे, पप्फोडिय-मोह-जालस्स ॥२॥
जाई-जरा-मरण-सोग-पणासणस्स,
कल्लाण-पुक्खल-विसाल-सुहावहस्स।
को देव-दाणव-नरिंद-गणच्चियस्स,
धम्मस्स सारमुवलब्भ करे पमाय ? ॥३॥
सिद्धे भो! पयओ णमो जिणमए नंदी सया संजमे,
देव-नाग-सुवन्न-किन्नर-गणस्सब्भूअभावच्चिए।

रहस्य को पाकर कौन बुद्धिमान प्राणी धर्म की आराधना में प्रमाद करे ? अर्थात् कोई भी प्रमाद न करे ।३

हे ज्ञानवान भव्य जीवो ! नय प्रमाण से सिद्ध ऐसे जैनदर्शन को मैं आदरपूर्वक नमस्कार करता हूँ। जिसका बहुमान किन्नरो, नाग-कुमारो, सुवर्णकुमारो और देवो तक ने भक्ति पूर्वक किया है, ऐसे संयम की वृद्धि जिनकथित सिद्धान्त से ही होती है । सब प्रकार का ज्ञान भी जिनोक्त सिद्धान्त मे ही निःसन्देह रीति से वर्तमान है । जगत् के मनुष्य, असुर आदि सब प्राणीमात्र आदि सकल पदार्थ-जिनोक्त सिद्धान्त में ही युक्ति प्रमाण पूर्वक वर्णित हैं। यह शाश्वत सिद्धान्त उन्नत होकर एकान्तवाद पर विजय प्राप्त करे और इससे चारित्रधर्म की भी वृद्धि हो ।४

पूज्य अथवा पवित्र ऐसे श्रुतधर्म के वन्दन आदि के निमित्त मैं कायोत्सर्ग करता हूँ।

२७—सिद्धाणं बुद्धाणं सूत्र

सिद्धाणं बुद्धाणं, पारगयाणं परंपरगयाणं ।
लोअग्गमुवगयाणं, नमो सया सव्वसिद्धाणं ॥१॥
जो देवाणवि देवो, जं देवा पंजली नमंसंति ।
तं देवदेव-महियं, सिरसा वंदे महावीरं ॥२॥
इक्कोवि नमुक्कारो, जिणवरवसहस्स वद्धमाणस्स ।
संसारसागराओ, तारेइ नरं व नारिं वा ॥३॥
उज्जिंतसेलसिहरे, दिक्खा नाणं निसीहिआ जस्स ।
धम्मचक्कवट्टिं, अरिट्ठनेमिं नमंसामि ॥४॥
चत्तारि अट्ठ दस दो, य वंदिआ जिणवरा चउव्वीसं ।
परमट्ठनिट्ठिअट्ठा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥५॥

गाथा ५, पद २०, सपदा २०, गुरु २५, लघु, १५१
सर्व वर्ण १७६

शब्दार्थ

सिद्धाण—सिद्धो के लिए सिद्धि पद पाने वालो के लिए
बुद्धाण—सर्वज्ञो के लिए
पारगयाण—ससार को पार करने वालो के लिए
परपरगयाण—गुणस्थानो के अनुक्रम से मोक्ष पाये हुओ के लिये
लोअग्गमुवगयाण—लोक के अग्रभाग पर गये हुओ के लिए
नमो—नमस्कार हो
सया—सदा
सव्वसिद्धाण—सब सिद्ध भगवतो
जो—जो
देवाण—देवो के
वि—भी
देवो—देव
ज—जिनको
देवा—देव
पजली—अजलीपूर्वक, हाथ जोड़कर
नमसति—नमस्कार करते हैं
त—उनको
देवदेव-महिअ—इन्द्रो द्वारा पूजित को
सिरसा—मस्तक झुकाकर
वदे—मैं वन्दन करता हूँ
महावीर श्री महावीर स्वामी को
इक्को—एक
वि—भी
नमुक्कारो—नमस्कार
जिणवरवसहस्स—जिनेश्वरो में उत्तम
वद्धमाणस्स—श्री वर्द्धमान स्वामी का
ससारसागराओ—ससार रूप सागर मे
तारेइ—तिरा देता है
नर—पुरुषो का
व—अथवा
नारि—नारियो को
वा—अथवा
उज्जितसेलसिहरे—गिरनार पर्वत

के शिखर पर
दिक्खा—दीक्षा
नाणं—केवलज्ञान
निसीहिआ—निर्वाण
जस्स—जिनका
तं—उन
धम्मचक्कवट्टिं—धर्म चक्रवर्ती
अरिट्ठनेमि—श्री अरिष्टनेमि भगवान् के लिए
नमंसामि—मैं नमस्कार करता हूं
चत्तारि—चार
अट्ठ—आठ
दस—दस
दो—दो
य—और
वंदिया—वंदन किये हुए
जिणवरा—जिनेश्वर
चउव्वीसं—चौवीसों
परमट्ठनिट्ठिअट्ठा—परमार्थ से कृत-कृत्य, मोक्षसुख को प्राप्त किये हुए
सिद्धा—सिद्ध
सिद्धिं—सिद्धि
मम—मुझे
दिसंतु—प्रदान करे

भावार्थ—जिन्होंने सर्वकार्य सिद्ध किये हैं, तथा सर्वभाव जाने हैं ऐसे सर्वज्ञ संसार समुद्र को पार पाये हुए, गुणस्थानों के अनुक्रम से मोक्ष पाये हुए तथा जो लोक के अग्रभाग पर विराजमान है उन सब सिद्ध परमात्माओं को मेरा निरंतर नमस्कार हो ॥१॥

जो देवों के भी देव हैं, जिनको देव दोनों हाथ जोड़कर अंजलिपूर्वक नमस्कार करते है तथा जो इन्द्रों से भी पूजित है, उन श्री महावीर स्वामी को मैं मस्तक झुका कर वन्दन करता हूँ ॥२॥

१—इस सूत्र के द्वारा सिद्धों की स्तुति की है इसलिए यह सिद्धस्तव सूत्र कहलाता है। इसकी पहली गाथा मे सब सिद्धो की स्तुति की है। दूसरी और तीसरी गाथा मे वर्तमान तीर्थ के अधिपति श्री वर्धमान स्वामी की स्तुति की गई है। चौथी गाथा मे गिरनार में विराजित श्री नेमिनाथ प्रभु की स्तुति की है और पांचवी गाथा में अष्टापद पर्वत प प्रतिष्ठित चौवीस तीर्थंकरो की स्तुति की है।

श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी तथा मन पर्यवज्ञानी आदि जो जिन हैं उनसे भी प्रधान सामान्य केवलज्ञानी जिन हैं ऐसे सामान्य केवलियो से भी श्रेष्ठ तीर्थंकर पदवी को पाये हुये श्री वर्धमान स्वामी को शुद्ध भावों से किया हुआ नमस्कार पुरुषो अथवा स्त्रियो को ससार रूपी समुद्र से तार देता है ॥३॥

जिनकी दीक्षा, केवलज्ञान और निर्माण गिरनार पर्वत के शिखर पर हुए हैं, उन धर्मचक्रवर्ती श्री अरिष्टनेमि भगवान् को मैं नमस्कार करता हूं ॥४॥

चार, आठ, दस और दो ऐसे क्रम से वन्दन किये हुए चौबीसों जिनेश्वर तथा जो मोक्ष सुख को प्राप्त किये हुए हैं ऐसे सिद्ध मुझे सिद्धि प्रदान करें ॥५॥

२८—वेयावच्चगराणं सूत्र

वेयावच्च-गराणं संति-गराणं, सम्मद्दिट्ठिसमाहि-गराणं करेमि काउस्सग्गं (अन्नत्थ० इत्यादि)

शब्दार्थ

वेयावच्च-गराण—वैयावृत्य करने वाले सेवा शुश्रूषा करने वाले
संति-गराण—शांति करने वाले
सम्मद्दिट्ठिसमाहि-गराण-सम्यग्दृष्टि जीवों को समाधि पहुचाने वाले देवो की आराधना करने के लिए।
करेमि काउस्सग्गं—मैं कायोत्सर्ग करता हू

अर्थ—श्री जिनशासन की वैयावृत्य—सेवा शुश्रूषा करने वालों, उपद्रवों अथवा उपसर्गों की शांति करने वालो, सम्यग्दृष्टि जीवों को, समाधि पहुंचाने वालो [ऐसे देवो की आराधना] के निमित्त मैं कायोत्सर्ग करता हूं।

२६—सुगुरु वन्दन सूत्र

इच्छामि खमासमणो ! वंदिउं जावणिज्जाए निसीहिआए।

अणुजाणह मे मिउग्गहं।

निसीहि अहोकायं कायसंफासं। खमणिज्जो मे किलामो। अप्प-किलंताणं बहुसुभेण मे दिवसो वइ-क्कंतो? जत्ताभे? जवणिज्जं च भे?

खामेमि खमासमणो ! देवसिअं वइक्कमं। आवस्सिआए पडिक्कमामि। खमासमणाणं देवसिआए आसायणाए तित्तीसन्नयराए जं किंचि मिच्छाए मण-दुक्कडाए वय-दुक्कडाए काय-दुक्कडाए कोहाए माणाए मायाए लोभाए सव्व-कालियाए सव्व-मिच्छो वयाराए सव्व-धम्माइक्कमणाए, आसायणाए जो मे अइयारो कओ तस्स खमासमणो ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि॥

पद ५८, गुरु २५, लघु, २०१, सर्व वर्ण.२२६

शब्दार्थ

इच्छामि—मै चाहता हूँ
खमासमणो—हे क्षमाश्रमण गुरुदेव
वंदिउ—वन्दन करना
जावणिज्जाए—अपनी शक्ति के अनुसार
निसीहिआए—अन्य सब प्रकार के कार्यों को छोड़कर
अणुजाणह—आज्ञा प्रदान करो

मे—मुझे
मिउग्गह्-परिमित अवग्रह में आने के लिये, मर्यादित भूमि मे प्रवेश करने के लिये
निसीहि—अशुभ व्यापारों के त्याग पूर्वक
अहोकाय—आपके चरणो को
कायसंफास—मैं उत्तमांग(मस्तक) से स्पर्श करता हूं उससे
खमणिज्जो—क्षमा करें।
भे—आप
किलामो—खेद
अप्प-किलताण-अल्प ग्लानि वाले आपका
बहुसुभेण—बहुत शुभ भाव से
भे—आपका,
दिवसो—दिन
वइक्कतो—बीता, व्यतीत हुआ
जत्ता—यात्रा, सयम यात्रा
भे—आपकी
जवणिज्ज—मन तथा इन्द्रियो की पीडा से रहित
च भे—और आपकी
खामेमि-खमाता हूँ, क्षमा मांगता हूँ
खमासमणो—हे क्षमाश्रमण
देवसिअ—दिन मे किये हुए
वइक्कम—व्यतिक्रम, अपराध को
आवस्सिआए—आवश्यक क्रिया के अतिचारो का,
पडिक्कमामि-प्रतिक्रमण करता हू
खमासमणाण—आप क्षमाश्रमण की
देवसिआए—दिवस सम्बन्धी
आसायणाए—आशातना
तित्तीसन्नयराए—तैंतीस में से किसी भी
ज किंचि—जो कोई
मिच्छाए—मिथ्याभाव से की हुई
मण-दुक्कडाए—मन के दुष्कृत वाली
वय-दुक्कडाए—वचन के दुष्कृत द्वारा
काय-दुक्कडाए—काया-शरीर के दुष्कृत द्वारा
कोहाए—क्रोध से हुई
माणाए—मान से हुई
मायाए—माया से हुई
लोभाए—लाभ से हुई
सव्व-कालिआए-सब काल सबंधी
सव्व-मिच्छोवयाराए—सब प्रकार के मिथ्या उपचारों से
सव्व-धम्माइक्कमणाए-सब प्रकार के धम का उल्लघन करने से

जो मे—जो मुझसे
अइयारो—अतिचार
कओ—किया हो, हुआ हो
तस्स—तत् सम्बन्धी
खमासमणो—हे क्षमाश्रमण
पडिक्कमामि—प्रतिक्रमण करता हूँ
निंदामि—निंदा करता हूँ
गरिहामि—गुरु के समक्ष निन्दा करता हूँ
अप्पाणं—[अशुभ योग में प्रवृत्त] अपनी आत्मा को
वोसिरामि—छोड़ देता हूँ, त्याग करता हूँ

भावार्थ—[शिष्य कहता है]—हे क्षमाश्रमण गुरुदेव ! मैं अन्य सब प्रकार के कार्यों से निवृत्त होकर अपनी शक्ति के अनुसार वन्दन करना चाहता हूँ ?[1]

मुझे परिमित अवग्रह [साढ़े तीन हाथ समीप आने] की आज्ञा दीजिये ।[2]

सब अशुभ व्यापारों के त्यागपूर्वक आपके चरणों को अपने उत्तमांग (मस्तक)से स्पर्श करता हूँ । इनसे आपको जो कोई खेद कष्ट हुआ

१—इस प्रकार शिष्य के पूछने पर यदि गुरु 'त्रिविधेन' ऐसा शब्द कहे तो उसका मतलब संक्षिप्त रूप से वन्दन करने की आज्ञा समझी जाती है। जब गुरु की ऐसी इच्छा मालूम दे तब तो शिष्य संक्षेप से ही वन्दन कर लेता है। परन्तु यदि गुरु "छंदेण" कहे तो इसका मतलब यह है कि यदि ऐसी ही इच्छा हो तो ऐसा करो—

२—तब शिष्य कहे—मुझे परिमित अवग्रह में प्रवेश करने की आज्ञा दीजिये। यहां गुरु कहें—'अणुजाणामि' आज्ञा देता हूँ। तब शिष्य 'निसीहि' कह कर अवग्रह में प्रवेश करे विधिपूर्वक बैठकर साधु हो तो बायें (डावे) घुटने पर और श्रावक हो तो चरवले पर मुखवस्त्रिका रख कर दोनों हाथ मस्तक पर लगाकर गुरु के चरणों को स्पर्श करते हुए आगे बोले—

हो उसकी मुझे क्षमा प्रदान करें। आपका दिन शुभ भाव से सुख पूर्वक व्यतीत हुआ है ?[3]

हे पूज्य! आपका तप, नियम, संयम और स्वाध्याय रूप यात्रा निराबाध चल रहे हैं ?[4]

आपका शरीर, इन्द्रियाँ नोइन्द्रिय (मन) कषाय आदि उपघात-पीडा रहित हैं ?[5]

हे गुरु महाराज! सारे दिन में जो कोई मैंने अपराध किया हो उसकी मैं क्षमा मांगता हूं।[6]

आवश्यक क्रिया के लिये अब मैं अवग्रह से बाहर आता हूँ। दिन में आप क्षमाश्रमण की तैंतीस[7] आशातनाओं में से कोई भी आशातना

३—यहाँ गुरु कहे 'तहत्ति'—ऐसा है।

४—यहाँ गुरु कहे—"तुब्भं पि वट्टए"—क्या तुम्हारी भी संयम यात्रा चल रही है ?

५—यहां गुरु कहे—"एवं" ऐसा ही है।

६—यहां गुरु कहे—"अहमवि खामेमि तुब्भं"—मैं भी तुम से क्षमा चाहता हूं।

७—गुरु की तैंतीस आशातनाओं से अवश्य बचना चाहिये—वे इस प्रकार हैं—

१ गुरु महाराज के आगे चलना।
२ गुरु महाराज के आगे खड़ा रहना।
३ गुरु महाराज के आगे बैठना।
४ गुरु महाराज के बराबर (बगल-बगल) चलना।
५ गुरु महाराज के बराबर खड़े रहना।
६ गुरु महाराज के बराबर बैठना।
७ गुरु महाराज के बहुत नजदीक अथवा सट कर बैठना।
८ गुरु महाराज के बहुत नजदीक अथवा सटकर चलना।

की हो उसकी मैं क्षमा चाहता हूं। और जो कोई अतिचार मिथ्याभाव के कारण हुई आशातना से हुआ हो, मन, वचन काया की दुष्ट प्रवृत्ति से

---

९. गुरु महाराज के बहुत नजदीक अथवा सटकर खड़े रहना। (यदि खास कारण से ऐसा करना पड़े तो आशय शुद्ध होने से तथा अधिक लाभ के कारण से आशातना का दोष नहीं लगता)।

१०. गुरु महाराज के पहले भोजन, समय कुली अथवा आचमन करना।

११ बाहर से गुरु के साथ आने पर यदि गुरु से पहले गमणागमण को आलोवे अर्थात् इरियावही पडिक्कमे।

१२. रात्रि का संथारा करने के बाद गुरु महाराज कुछ पूछे अथवा बुलावे तब सुन लेने पर भी उत्तर न दे और मौन रहे।

१३. गुरु के पास आये हुए गृहस्थ को अपना रागी बनाने के लिये गुरु के पहले उसे स्वयं बुला लेवे।

१४. भिक्षा वृत्ति से लाया हुआ आहार-पानी आदि प्रथम गुरु के सामने लाकर रखना चाहिये और गोचरी भी वही आलोनी चाहिए यदि ऐसा न करके अपनी इच्छा से गुरु से पहले उतावल से लाई हुई गोचरी किसी दूसरे साधु के पास आलोव कर बाद मे गुरु के पास आलोवे।

१५. अन्न आदि लाकर प्रथम दूसरे साधुओ को दिखला कर बाद में गुरु को दिखावे।

१६. अशन आदि लाकर पहले दूसरे साधु को निमंत्रित कर बाद में गुरु को निमंत्रण करे।

१७. गुरु को पूछे बिना दूसरे साधुओ को उनकी इच्छानुसार अशनादि देवे।

हुई आशातना से हुआ हो, क्रोध, मान, माया, लोभ की प्रवृत्ति से हुआ हो अथवा सवकाल सम्बन्धी, सर्व प्रकार के मिथ्या उपचारो से अर्थात् कूट कपट से, अष्ट प्रवचन माता रूप सवधम काय के अतिक्रमण के

---

१८ गुरु के साथ अशनादि खाते हुए स्वय अच्छा आहार ग्रहण करे।

१९ गुरु के बुलाने पर उत्तर न देवे।

२० गुरु के बुलाने पर कहे कि मुझे ही बुलाते हो दूसरे किसी को क्यो नही बुलाते इत्यादि कटु वचन बोले।

२१ गुरु के बुलाने पर उनके पास जाकर नम्रतापूर्वक जवाब न देकर अपने आसन पर बैठा-बैठा उत्तर दे अथवा उद्दडता से उत्तर दे।

२२ गुरु बुलावे तब क्या है? कहो तो क्या कहते हो? इत्यादि अविनीत वचन बोले।

२३ गुरु कोई काम करने को कहे तो सामने उत्तर दे—तुम स्वय क्यो नही कर लेते मुझे क्यो कहते हो।

२४ गुरु को तू करके बुलावे।

२५ गुरु धम कथा कहे तो शिष्य का मन हर्षित न हो अथवा गुरु के किसी भक्त को देखकर राजी न हो।

२६ गुरु सूत्रादि का व्याख्यान करते हो तब आप भूल गये हो, यह बात तुम्हे याद नही।

२७ गुरु व्याख्यान करते हो तब बीच मे उनकी बात काटकर स्वय सभा समक्ष बोलने लगे।

२८ गुरु की परिषदा बैठी हो उसी समय अपनी विद्वत्ता बतलाने के लिये गुरु महाराज ने व्याख्यान मे जो बात कही हो उसे ही बारबार विस्तार से कहे।

कारण हुई आशातना से हुआ हो; उनसे हे क्षमाश्रमण ! आपके समीप मैं प्रतिक्रमण करता हू, आत्मा की साक्षी से निन्दा करता हूं, तथा आपकी साक्षी मे मैं उसकी गर्हा करता हूं एवं ऐसी पापमय मेरी आत्मा को मैं वोसराता हूं—त्याग करता हूं।[8]

३०. देवसिअं आलोउं सूत्र

इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! देवसिउं ।

(गुरु कहे—'आलोएह')

इच्छं । आलोएमि जो मे० ।

---

२९. गुरु की शैय्या-संस्तार को पग आदि से संघटा हो जाने पर "मिच्छा मि दुक्कड" देकर न खमावे ।

३०. गुरु व्याख्यान दे रहे हों तब वीच में आकर कहे—गुरु महाराज भिक्षा का समय हो गया है इत्यादि बोलकर पर्षदा का भंग करे ।

३१. गुरु की शैय्या अथवा संथारा आदि पर वैठे, लेटे, अथवा असभ्यता पूर्वक उसका स्पर्श करे ।

३२. गुरु से ऊँचे आसन पर बैठे अथवा गद्दी बनाकर वैठे अथवा गुरु के वस्त्र से अधिक मूल्यवान वस्त्र काम में लेवे ।

३३. गुरु के समान आसन रखना अथवा गुरु जैसे कपड़े रखना । (ये आशातनाएँ दशाश्रुत स्कंध मे कही हैं) ।

---

८. दूसरी बार की वंदना में 'आवस्सिआए' पद नही कहना । रात्रि प्रतिक्रमण में 'राइ वइक्कंता', पाक्षिक प्रतिक्रमण में 'पक्खो वइक्कंतो', चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में 'चउमासी वइक्कता,' तथा सावत्सरिक प्रतिक्रमण मे 'सवच्छरी वइक्कंतो' कहना ।

शब्दार्थ

इच्छाकारेण—इच्छापूर्वक	आलोउ—आलोचना करूँ
संदिसह—आज्ञा दीजिये	[आलोएह—आलोचना करो]
भगवन्—हे भगवन् !	इच्छं—चाहता हूं
देवसिअं—दिवस सम्बन्धी	आलोएमि—आलोचना करता हूं

भावार्थ—हे भगवन् ! इच्छापूर्वक आज्ञा प्रदान करो । मैं दिवस सम्बन्धी आलोचना करूँ ?

[गुरु कहे—आलोचना करो]

[शिष्य—इसी प्रकार चाहता हूं ।]

दिवस सम्बन्धी मुझ से जो अतिचार हुआ हो उसकी आलोचना करता हूं ।

३१—आलोयण[९]

आज के चार प्रहर-दिन मे मैंने जिन जीवो की विराधना की हो—

सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अप्काय, सात लाख तेउकाय, सात लाख वाउकाय, दस लाख प्रत्येक-वनस्पतिकाय, चौदह लाख साधारण वनस्पति-काय, दो लाख दो इन्द्रिय वाले, दो लाख तीन इन्द्रिय वाले, दो लाख चार इन्द्रिय वाले, चार लाख देवता, चार लाख नारकी, चार लाख तिर्यंच पचेन्द्रिय, चौदह लाख मनुष्य । कुल चौरासी लाख जीवयोनियो मे से

९—योनि अर्थात् जीव का उत्पत्ति स्थान । कुल मिलाकर जीवों के ८४००००० (चौरासी लाख) उत्पत्ति स्थान हैं । यद्यपि स्थान तो इसम भी बहुत अधिक है, परन्तु वर्ण, गंध, रस, स्पर्श से जितने स्थान समान

किसी जीव का मैंने हनन किया, कराया हो या करते हुए का अनुमोदन किया हो वह सब मन, वचन, काया करके मिच्छा मि दुक्कडं ।

३२—अठारह पापस्थानक

पहला प्राणातिपात, दूसरा मृषावाद, तीसरा अदत्तादान, चौथा मैथुन, पांचवां परिग्रह, छठा क्रोध सातवां मान, आठवां माया, नवां लोभ, दसवां राग, ग्यारहवां द्वेष, बारहवां कलह, तेरहवां अभ्याख्यान, चौदहवां पैशुन्य, पन्द्रहवां रति-अरति, सोलहवां पर-परिवाद, सत्रहवां माया-मृषावाद, अठारहवां मिथ्यात्व-शल्य; इन अठारह पापस्थानों में से किसी का मैंने सेवन किया हो, कराया हो या करते हुए का अनुमोदन किया हो, वह सब मन, वचन, काया करके मिच्छा मि दुक्कडं ।

हो वे सब मिलकर एक ही स्थानक कहा जाता है ।

इनकी गिनती इस प्रकार है—पृथ्वीकाय के मूल ३५० भेद, इन को ५ वर्ण से गुणा करने से १७५० भेद, इनको २ गंध से गुणा करने से ३५०० भेद, इनको ५ रस से गुणा करने से १७५०० भेद, इनको ८ स्पर्श से गुणा करने से १४०००० भेद, इनको ५ संस्थान से गुणा करने से ७००००० सात लाख भेद पृथ्वीकाय के होते हैं । इस प्रकार सबकी गिनती करनी चाहिए । उपर्युक्त ८४००००० चौरासी लाख योनियों में उत्पन्न हुए किसी भी जीव का हनन किया हो, हनन कराया हो अथवा हनन करने वाले को अनुमति दी हो तत्सम्बन्धी मन, वचन, काया द्वारा मिथ्या दुष्कृत इस पाठ द्वारा दिया जाता हैं ।

भावार्थ १ पर जीव के प्राणों का नाश-जीव हिंसा का विचार—प्राणातिपात ।

२ असत्य बोलने का परिणाम—झूठ बोलने का विचार—मृषावाद ।

३ दूसरे की वस्तु उसके मालिक की सम्मति विना लेने की इच्छा करना, चोरी का विचार करना—अदत्तादान ।

४ विषय भोग की वाछा करना—मैथुन ।

५ नौ प्रकार की वाह्य तथा चौदह प्रकार की आभ्यतर वस्तुओ आदि की इच्छा अथवा मूर्छा करना—परिग्रह ।

६ दूसरे पर तीव्र परिणामो से मुख आदि अवयवो को तपाना-गुस्सा-क्रोध ।

७ प्राप्त अथवा अप्राप्त वस्तु का अहकार-गर्व-घमण्ड करना—मान ।

८ गुप्त रूप से स्वार्थवृत्ति सिद्ध करने की वांछा—कपट-माया ।

९ धनादि सपत्ति को इकट्ठी करके सग्रह करने की मनोवृत्ति-लालच-लोभ ।

१० पौद्गलिक वस्तु पर प्रीति—राग ।

११ अप्रिय जीवादि पदार्थो पर अप्रीति—द्वेष ।

१२ पर के साथ क्लेश करना—कलह ।

१३ दूसरे प्राणी को न देखा हुआ, न सुना हुआ झूठा दोष देना—अभ्याख्यान ।

१४ अन्य प्राणी के दोष को दूसरो के पास चुगली करना-पैशुन्य ।

१५ सुख पाकर हर्ष करना-रति तथा दुख पाकर शोक करना-अरति ।

१६ गुणी अथवा दुर्गुणी जीव की निन्दा करना—पर-परिवाद ।

१७. कपट वृत्ति से असत्य बोलकर बलपूर्वक लोगों को ठगने के परिणाम—माया-मृषावाद ।

१८. व्यवहार के कुदेव, कुगुरु तथा कुधर्म सेवन की अभिलाषा और निश्चय से आत्म स्वरूप के अनुभव को विघ्न करने वाले आत्मा के परिणाम —मिथ्यात्व-शल्य ।

भाव-पाप—अठारह प्रकार के जीव के चित्त में पाप रूप भाव उत्पन्न होते हैं वे भाव पाप कहलाते हैं ।

द्रव्य-पाप—भाव पापो की चिकनाहट से अर्थात् बुरे अध्यवसाय से जीव को कर्म के दलिये लगते हैं वह द्रव्य पाप कहलाता है ।

३३—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, पाटी, पोथी, ठवणी, कवली, नवकरवाली, देव-गुरु-धर्म की आशातना की हो; पन्द्रह कर्मादानों की आसेवना की हो; राजकथा, देशकथा, स्त्रीकथा, भक्त (भोजन) कथा की हो और जो कोई पर निन्दा पाप आदि किया हो, कराया हो अथवा करने वाले का अनुमोदन किया हो, सो सब मन, वचन, काया करके दिवस में लगे अतिचार आलोयण करके प्रतिक्रमण में आलोउं, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

३४—वंदित्तु (श्रावक का प्रतिक्रमण) सूत्र

वंदित्तु सव्वसिद्धे, धम्मायरिए अ सव्वसाहू अ ।
इच्छामि पडिक्कमिउं, सावगधम्माइआरस्स ॥१॥

शब्दार्थ

[1]वंदित्तु—वन्दन करके	अ—और
सव्वसिद्धे—सब सिद्ध भगवन्तो को	इच्छामि—मैं चाहता हू।
धम्मायरिए—धर्माचार्यो को	पडिक्कमिउ—प्रतिक्रमण करने को
अ—और	सावगधम्माइआरस्स—श्रावक धर्म में लगे हुए अतिचारों का
सव्वसाहू—सब साधुओ को	

भावार्थ—सब सिद्ध भगवन्तों को, धर्माचार्यों को तथा सब साधुओ को वन्दन करके—श्रावक धर्म मे लगे हुए अतिचारो का मैं प्रतिक्रमण करना चाहता हू ॥१॥

१—श्रावक को दिवस सम्बन्धी लगे हुए अतिचारो की आलोचना करने के लिये वंदित्तु सूत्र सध्या समय जब सूर्य आधा अस्त हुआ हो उस समय कहना चाहिये। श्रावक के बारह व्रतो आदि में लगे हुए १२४ अतिचारो की इस सूत्र द्वारा आलोचना की जाती है।

प्रकट हुए गुण को जो मलिन करता है, उसे अतिचार कहते हैं। भग और अतिचार मे क्या अन्तर है? प्रकट हुए गुण के लोप को एव सर्वथा तिरोभाव को भग कहते हैं और उसके अल्प तिरोभाव को अतिचार कहते हैं। शास्त्र मे भग को 'सर्वविराधना' और अतिचार को 'देश विराधना' कहा है। अतिचार का कारण कषाय का उदय है। कषाय का उदय तीव्र, मन्द आदि अनेक प्रकार का होता है। तीव्र उदय के समय गुण प्रकट ही नही होता, मन्द उदय के समय गुण प्रकट तो होता है किन्तु बीच मे कभी-कभी उसमें मालिन्य हो जाता है। इसीसे शास्त्र मे काषायिक शक्ति को विचित्र कहा है। उदाहरणार्थ-अनन्ता—नुबन्धि कषाय का उदय सम्यक्त्व को प्रकट होने से रोकता है और कभी उसे न रोककर उसमें मालिन्य मात्र पैदा करता है। इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण कषाय देशविरति को प्रकट होने से रोकता भी है और कदाचित उसे न रोककर उसमें मालिन्य मात्र पैदा करता है।

[सामान्य व्रतातिचार की आलोचना]

जो मे वयाइआरो, नाणे तह दंसणे चरित्ते अ ।
सुहुमो व बायरो वा, तं निंदे तं च गरिहामि ॥२॥

शब्दार्थ

जो—जो
मे—मुझे
वयाइआरो—व्रतों के विषय में अतिचार लगा हो
नाणे—ज्ञान के विषय में
तह—तथा
दंसणे—दर्शन के विषय में
चरित्ते—चारित्र के विषय में
अ—और (तप)
साहुमो-सूक्ष्म—शीघ्र ध्यान मे न आवे ऐसा छोटा
व—अथवा
बायरो-शीघ्र ध्यान में आवे ऐसा बड़ा—बादर
वा—अथवा
तं—उसकी
निंदे—निन्दा करता हूं-आत्मा की साक्षी से बुरा मानता हूं
तं—उसकी
च—और
गरिहामि—गुरु की साक्षी मे प्रकट करता हूं, गर्हा करता हूं

भावार्थ—मुझे व्रतो के विषय में और ज्ञान, दर्शन और चारित्र तथा तप की आराधना के विषय मे छोटा अथवा बड़ा जो अतिचार लगा हो उसकी मैं अपनी आत्मा की साक्षी से निन्दा करता हूं एव गुरु की साक्षी में गर्हा करता हूं ॥२॥

दुविहे परिग्गहम्मि, सावज्जे बहुविहे अ आरंभे ।
कारावणे अ करणे, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥३॥

इस तरह विचारने से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि व्यक्त गुण की मलिनता या उसके कारणभूत कषाय उदय को ही अतिचार कहना चाहिये ।

शब्दार्थ

दुविहे—दो प्रकार के (बाह्य-अभ्यन्तर)
परिग्गहम्मि—परिग्रह के लिये (जो वस्तु ममत्व से ग्रहण की जावे वह परिग्रह)
सावज्जे—पाप वाले
बहुविहे—अनेक प्रकार के
अ—और
आरंभे—आरम्भो को
कारावणे—दूसरे से करवाने से
अ—और (अनुमोदना से)
करणे—स्वय करने से
पडिक्कमे—प्रतिक्रमण करता हू। निवृत्त होता हू।
देसिअं—दिवस-सम्बन्धी
सव्व—छोटे-बड़े जो अतिचार लगे हो उन सब से

भावार्थ—बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रह के कारण, पाप वाले अनेक प्रकार के आरम्भ दूसरे से करवाते हुए तथा स्वय करते हुए एव अनुमोदन करते हुए दिवस सम्बन्धी छोटे-बड़े जो अतिचार लगे हो उन सब से मैं निवृत्त होता हू ॥३॥

जं बद्धमिंदिएहिं, चउहिं कसाएहिं अप्पसत्थेहिं
रागेण व दोसेण व, तं निंदे तं च गरिहामि ॥४॥

शब्दार्थ

जं—जो
बद्ध—बधा हो
इंदिएहिं—इन्द्रियो से
चउहिं कसाएहिं—चार कषायो से
अप्पसत्थेहिं—अप्रशस्त
रागेण—राग से (प्रीति अथवा आसक्ति से)
व—अथवा
दोसेण—द्वेष से (अप्रीति से)
व—अथवा
तं निंदे—उसकी आत्मा की साक्षी से निंदा करता हू।
तं च—और उसकी
गरिहामि—गुरु की साक्षी मे गर्हा करता हू

भावार्थ—अप्रशस्त (विकारों के वश हुई) इन्द्रियों, क्रोधादि चार कपायों द्वारा तथा उप-लक्षण से मन, वचन, काया के योग राग और द्वेष के वश होकर जो अशुभ कर्म बंधा हो उनकी मैं निन्दा करता हूं, उसकी मैं गर्हा करता हूं ॥४॥

आगमणे निग्गमणे, ठाणे चंकमणे अणाभोगे
अभिओगे अ निओगे पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥५॥

शब्दार्थ

आगमणे—आने में
निग्गमणे—जाने में
ठाणे—एक स्थान पर खड़े रहने से
चंकमणे—वहीं पर इधर-उधर फिरने से
अणाभोगे—उपयोग न होने से
अभिओगे—दवाव से
अ—और
निओगे—नौकरी आदि के कारण
पडिक्कमे देसिअं सव्वं—दैनिक इन सब दोषों से निवृत्त होता हूं।

भावार्थ—उपयोग न होने से अर्थात् ध्यान न रहने से, राजा आदि के दवाव[1] से अथवा मंत्री, सेठ आदि अधिकारी की परतंत्रता के कारण, मिथ्यादृष्टि के रथ यात्रा आदि उत्सव देखने के लिये आने में, घर में से वाहर जाने में, मिथ्यादृष्टि के चैत्य आदि में खड़े रहने में अथवा वहीं पर इधर-उधर फिरने में, दर्शन-सम्यक्त्व सम्वन्धी जो कोई अति-चार दिन में लगे हो उन सब दोषों से मैं निवृत्त होता हूं ॥५॥

---

१ राजा १. गण अर्थात् स्वजनादि समूह, २. वल अर्थात् इनके सिवाय कोई वलवान, ३. दुष्ट देवता ४. माता-पिता आदि ५ इनके आग्रह से अर्थात् वलात्कार से अथवा दुष्काल में अथवा अरण्यादि में निर्वाह न होने से।

[सम्यक्त्व के अतिचारों की आलोचना]

संका कंख विगिच्छा, पसंस तह संथवो कुलिंगीसु ।
सम्मत्तस्सइआरे पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥६॥

शब्दार्थ

संका—वीतराग सर्वज्ञ के वचनो मे शका
कंख—अन्य मत की इच्छा-कांक्षा
विगिच्छा—धर्म के फल मे सदेह होना अथवा साधु-साध्वी का मलिन शरीर या वस्त्र देखकर उनकी निंदा करना
पसंस—मिथ्यात्वियो की अथवा उनकी धर्म क्रिया आदि की प्रशसा करना
तह—तथा
कुलिंगीसु—मिथ्यादृष्टियो का परिचय करना
सम्मत्तस्सइआरे—सम्यक्त्व के अतिचारो से
पडिक्कमे देसिअं सव्वं—दैनिक इन सब दोषो से निवृत्त होता हू ।

भावार्थ—सम्यक्त्व मे मलिनता करने वाले पाच अतिचार हैं जो त्यागने योग्य हैं उनकी इस गाथा मे आलोचना की गई है । वे अतिचार इस प्रकार हैं

(१) वीतराग सर्वज्ञ के वचन पर देश (अल्प) अथवा सर्वथा से शका करना यह शका अतिचार है । (२) अन्य अहितकारी मत को चाहना यह कांक्षातिचार है । (३) धर्म का फल मिलेगा या नही ऐसा सदेह करना अथवा निस्पृह साधु-साध्वियो के मलिन शरीर, वस्त्रादि देखकर उनसे घृणा करना अथवा निंदा करना यह विचिकित्सा अतिचार है । (४) मिथ्यात्वियो की अथवा उनकी धर्म क्रिया आदि की प्रशसा यह प्रशसा अतिचार है । (५) तथा मिथ्यादृष्टिया से परिचय करना अथवा बनावटी वेश पहनकर धर्म के बहाने लोगो को धोखा देने वाले

पाखंडियो का परिचय करना यह कुलिंगिसंस्तव अतिचार है । इन पाँच मे से दिन सम्बन्धी जो छोटे अथवा बड़े अतिचार लगे हों उनसे मैं निवृत्त होता हूं ॥६॥

[चारित्राचार में आरंभजन्य दोषों की आलोचना]

छक्कायसमारंभे, पयणे अ पयावणे अ जे दोसा
अत्तट्ठा य परट्ठा, उभयट्ठा चेव तं निंदे ॥७॥

शब्दार्थ

छक्काय-समारंभे[1]—पृथ्वीकाय आदि छै काय के जीवों की विराधना हो ऐसी प्रवृत्ति मे
पयणे—रांधते हुए
अ—और
पयावणे—रंधाते हुए
अ—तथा
जे—जो
दोसा—दोष
अत्तट्ठा—अपने लिये
य—अथवा
परट्ठा—दूसरो के लिये
उभयट्ठा—दोनो के लिये
चेव—साथ ही निरर्थक द्वेषादि के लिये
तं निंदे—उनकी मैं निंदा करता हूं

भावार्थ—अपने लिये, दूसरो के लिये, अपने तथा दूसरों (दोनो) के लिये अथवा निरर्थक रागद्वेष के लिये, स्वयं पकाने, दूसरों से पकवाने, अथवा पकाने आदि की अनुमोदना करने से पृथ्वीकाय आदि छै

---

१. इस गाथा मे समारभ मात्र लिखा है तो भी सरम्भ, समारंभ, तथा आरम्भ ये तीनो समझे । इनमे प्राणी के वधादि का जो संकल्प करना वह संरम्भ-१, उसे परिताप देना समारम्भ २ तथा उसके प्राणो का वियोग करना वह आरम्भ ३, कहलाता है ।

काया के जीवो की विराधना के विषय मे मुझे जो कोई दोष[1] लगा हो उसकी मैं निन्दा करता हू ॥७॥

[सामान्यरूप से बारह व्रतों के अतिचारो की आलोचना]

पचण्हमणुव्वयाणं, गुणव्वयाण च तिण्हमइआरे ।
सिक्खाण च चउण्ह, पडिक्कमे देसिअ सव्व ॥८॥

शब्दार्थ

पचण्ह—पांच	सिक्खाण—शिक्षाव्रतो के
अणुव्वयाण—अणुव्रतो के	च—और
गुणव्वयाण—गुणव्रतो के	
तिण्ह—तीन	चउण्ह—चार
च—और	पपडिक्कमे देसिअ सव्व—दैनिक इन
अइआरे—अतिचारो से	सब दोषो से मैं निवृत्त होता हू

भावार्थ—पांच अणुव्रतो, तीन गुणव्रतो और चार शिक्षाव्रतो मे

---

१ यहाँ दोष की निन्दा की है, पर अतिचार की निन्दा नही की, कारण कि श्रावक-श्राविका को छै काया के आरम्भ का त्याग नही होता, अत अतिचार नही कहला सकता इसलिये यहाँ निन्दा मात्र ही की है । पर इसका प्रतिक्रमण किया नही । तथा 'दुविहे परिग्गहम्मि' इस तीसरी गाथा मे सावद्य तथा अनेक प्रकार के आरम्भ का प्रतिक्रमण किया है अत इस गाथा मे अतिचारो की आलोचना की गई है ।

(उन-बारह व्रतो मे[1]) दिन सम्बन्धी छोटे-बड़े जो अतिचार लगे हों उन सब से मैं निवृत्त होता हूं ॥८॥

[पहले अणुव्रत के अतिचारो की आलोचना]

पढमे अणुव्वयम्मि, थूलग-पाणाइवाय-विरईओ ।
आयरियमप्पसत्थे, इत्थ पमाय-प्पसंगेणं ॥९॥
वह-बंधछविच्छेए, अइभारे भत्तपाणवुच्छेए ।
पढमवयस्सइआरे, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥१०॥

शब्दार्थ

इत्थ—इस
थूलग—स्थूल
पाणाइवाय-विरईओ—प्राणातिपात विरति रूप
पढमे—प्रथम, पहले
अणुव्वयम्मि—अणु व्रत के विषय मे
पमायप्पसंगेणं—प्रमाद के प्रसग से
अप्पसत्थे—अप्रशस्त
आयरिअं - आचरण किया हो
वह—वध
बंध—बन्धन
अविच्छेए—अंगच्छेद
अइभारे—बहुत बोझा लादना
भत्तपाणवुच्छेए खाने पीने मे रुकावट डालना
पढमवयस्स—पहले व्रत के
अइआरे—अतिचारो के कारण जो कुछ
पडिक्कमेदेसिअंसव्वं—दैनिक इन सब दोषो से मैं निवृत्त होता हूं ।

---

१. सम्यक्त्व की प्राप्ति होने के बाद ये व्रत प्राप्त होते हैं । श्रावक के पहले पॉच व्रत महाव्रतो की अपेक्षा छोटे होने के कारण अणु व्रत कहे जाते हैं ये देश मूलगुण रूप हैं । तथा इन पाँच व्रतों को गुणकारक अर्थात् पुष्टिकारक होने से छठा-सातवाँ-आठवाँ ये तीन व्रत गुणव्रत कहे जाते हैं । तथा शिष्य को विद्याग्रहण करने के समान जो बार-बार सेवन करने योग्य होने से अथवा पहले के आठ व्रतो में विशेष शुद्धि लाने के कारण होने से नवे आदि चार व्रत शिक्षाव्रत कहे जाते हैं । गुणव्रत तथा शिक्षाव्रत "देश उत्तरगुण रूप" हैं ।

पहले आठ व्रत यावत्कथित है अर्थात् जितने काल के लिए ये व्रत लिये जाते हैं उतने काल तक इनका पालन निरन्तर किया जाता है । पिछले चार जो शिक्षाव्रत हैं वे इत्वरिक है अर्थात् जितने काल के लिये ये व्रत लिये जावे उतने काल तक उनका पालन निरन्तर नही किया जाता-अमुक काल मे ही इनका पालन करना होता है परन्तु ये बार-बार अभ्यास करने योग्य है ।

भावार्थ—अब[1] यहाँ प्रथम अणुव्रत के विषय मे (लगे हुए अतिचारो का प्रतिक्रमण किया जाता है) प्रमाद के प्रसग से अथवा (क्रोधादि) *अप्रशस्त- भावो का उदय* होने से स्थूल-प्राणातिपात-विरमण व्रत मे जो कोई अतिचार लगा हो उससे मैं निवृत्त होता हू।

१ वध—पशु अथवा दास-दासी आदि किसी जीव को भी निर्दयतापूर्वक मारना।

२ बन्ध—किसी भी प्राणी को रस्सी, साकल आदि से बाधना अथवा पिंजरे आदि मे बन्द करना।

३ अगच्छेद—अवयवो (कान, नाक, पूँछ आदि) अथवा चमडी को काटना-छेदना।

४ अइभारे—बहुत बोझा लादना। परिमाण से अधिक बोझा लादना।

---

१ मृषावाद आदि से भी इस पहले व्रत के अतिचार सम्भव हैं। जैसे कि स्नेह की परीक्षा करने के इरादे से किसी देव ने 'राम मर गया है" ऐसा लक्ष्मण से कहा। यह सुनते ही तुरन्त लक्ष्मण मर गया। कुमारपाल राजा के कौतुकवश धन ले लेने से ही चूहे की मृत्यु हो गई। तो इस प्रकार चाहे मृषावाद का अतिचार हो तो भी इसका पहले व्रत मे ही आलोचना करना उचित है। ऐसा बताने के लिये इस गाथा मे 'इत्थ' शब्द रखा है।

२ भूतादि दोष अथवा बीमारी आदि दोष दूर करने के लिए वध-बध आदि का आचरण हो अथवा देशविरति मे से सर्वविरति मे जाना यह भी अतिचार हुआ पर ये सब प्रशस्त होने से इनका प्रतिक्रमण नहीं होता ऐसा बतलाने के लिए गाथा मे 'अप्पसत्थे' शब्द लिया है।

५ भत्तपाणवुच्छेए[1]—खाने-पीने में रुकावट पहुचाना ।

इन उपर्युक्त विषयो में से छोटे-वडे दिन मे जो अतिचार लगे हों उन सव से मैं निवृत्त होता हूं ॥९-१०॥

(दूसरे अणुव्रत के अतिचारों की आलोचना)

बीए अणुव्वयम्मि परिथूलगअलियवयणविरईओ ।
आयरिअमप्पसत्थे, इत्थ पमायप्पसंगेणं ॥११॥

---

१. यहाँ कोई यदि शका करे वध-बन्ध आदि ऊपर लिखे हुए पाँचो कारणो से प्राणी की हिंसा नही होती और श्रावक ने तो प्राणी की हिसा का प्रत्याख्यान किया है, तो ये वध-बन्धनादि अतिचार क्यो ? इसका उत्तर यह है कि प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करने वाले श्रावक को वास्तविक रूप से देखे तो अपेक्षारहित (निरर्थक) वध-वन्ध आदि का भी प्रत्याख्यान किया हुआ है क्योकि वह वध-बन्धनादि प्राणातिपात का कारण है ।

प्रश्न—यदि ऐसा ही है तो वधादि करने से व्रत का भग हुआ ऐसा मानना उचित है । अतः इसे अतिचार क्यो माना जाय ? क्योकि व्रत का पालन नही हुआ ।

उत्तर—प्रत्येक व्रत दो प्रकार का होता है आभ्यंतर और बाह्य । उनमे व्रत की अपेक्षा रखे विना क्रोधादि से कोई वध-वन्धनादि करने लगा । उस समय वह जीव मरा नहीं, इससे बाह्यवृत्ति का व्रत कायम रहा, परन्तु दया रहित क्रोध वश वधादि किया इसलिये आभ्यंतर वृत्ति से उसके व्रत का भंग हुआ । इससे एक देश का भंग और एक देश का पालन हुआ इसे ही अतिचार कहते है । व्रत की अपेक्षा रखते हुए अनाभोगादि से अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार से सर्वत्र अतिचार ही होता है; क्योकि हृदय मे दयावृत्ति होने से आभ्यंतर वृत्ति से भग नही होता, बाह्यवृत्ति से भंग हो तो भी अतिचार लगता है ।

सहसारहस्स-दारे, मोसुवएसे अ कुडलेहे अ ।
बीयवयस्सइआरे, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥१२॥

शब्दार्थ

इत्थ—यहाँ, अब
बीए—दूसरे
अणुव्वयम्मि—अणुव्रत के विषय में
पमायप्पसंगेण—प्रमाद वश
अप्पसत्थे—क्रोधादि अप्रशस्त भाव में रहते हुए
परिथूलगअलियवयणविरईओ—स्थूल असत्यवचन की विरति में
आयरिअं – अतिचार लगा हो ।
सहसा—बिना विचार किये किसी पर दोष लगाना
रहस्स—एकान्त में बातचीत करने वाले पर दोष लगाना
दारे—स्त्री की गुप्त बात को प्रकट करना
मोसुवएसे—मिथ्या उपदेश अथवा झूठी सलाह देने से
कुडलेहे—और बनावटी लेख लिखना
बीयवयस्स—दूसरे व्रत के नियम में
अइआरे—अतिचारों से
पडिक्कमे देसिअं सव्वं—दिन सबधी लगे हुए सब दोषों से निवृत्त होता हू

भावार्थ—अब दूसरे व्रत के विषय में (लगे हुए अतिचारों का प्रतिक्रमण किया जाता है) यहाँ प्रमाद के प्रसंग से अथवा क्रोधादि अप्रशस्त भाव का उदय होने से स्थूलमृषावाद [1]—विरमण व्रत में जो कोई अतिचार लगा हो उससे मैं निवृत्त होता हू ॥११॥

---

१ सूक्ष्म और स्थूल दो तरह का मृषावाद (झूठ) है । (१) हसी दिल्लगी में झूठ बोलना मृषावाद है । इसका त्याग करना गृहस्थ के लिये कठिन है । अत (२) वह स्थूल मृषावाद का त्याग करता है—जैसे कि क्रोध

(१) विना विचारे किसी के सिर दोष मढने मे, (२) एकान्त बातचीत करने वाले पर दोषारोपण करने से, (३) स्त्री की गुप्त मार्मिक बातो को प्रकट करने से, (४) असत्य उपदेश देने से, (५) झू लेख (दस्तावेज) लिखने से दूसरे व्रत के विषय मे दिन सम्बन्धी छोटे बड़े जो अतिचार लगे हो, उन सब से मैं निवृत्त होता हू ॥१२॥

(तीसरे अणुव्रत के अतिचारों की आलोचना)

तइए अणुव्वयम्मि, थूलगपरदव्वहरणविरईओ ।
आयरियमप्पसत्थे, इत्थ पमायप्पसंगेणं ॥१३॥

तेनाहडप्पओगे, तप्पडिरूवे विरुद्धगमणे अ ।
कूडतुलकूडमाणे, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥१४॥

शब्दार्थ

इत्थ—यहाँ, अब
तइए—तीसरे
अणुव्वयम्मि—अणु व्रत मे
पमाएप्पसगेणं—प्रमादवश
अप्पसत्थे—अप्रशस्त भाव से
थूलग—स्थूल
परदव्वहरणविरईओ—परद्रव्य हरण की विरति से दूर हो ऐसा
आयरिअं—अतिचार किया हो

अथवा लालचवश सुशील कन्या को दु:शील और दु:शील कन्या को सुशील कहना, अच्छे पशु को बुरा और बुरे को अच्छा बतलाना, दूसरे की जायदाद को अपनी और अपनी जायदाद को दूसरे की साबित करना, किसी की रखी हुई धरोहर को दबा लेना या झूठी गवाही देना, इत्यादि प्रकार के झूठ का त्याग करता है। यही दूसरा अणु व्रत है। इस व्रत मे जो बाते अतिचार रूप है उनको दिखाकर इन दो गाथाओ में उनके दोषो की आलोचना की गई है।

तेनाहडप्पओगे—चोर द्वारा लाई हुई वस्तु का प्रयोग करने से	कूडतुल—झूठा तोल तोलने से
तप्पडिरूवे—असली वस्तु दिखला कर नकली देना	कडमाणे—झूठा माप मापने से
विरुद्धगमणे अ—और राज्यविरुद्ध प्रवृत्ति करना	देसिअं—दिन सम्बन्ध दोषो से
	पडिक्कमे—निवृत्त होता हू
	सव्व—सब

भावार्थ—अब तीसरे अणुव्रत के विषय मे (लगे हुए अतिचारो का प्रतिक्रमण किया जाता है) प्रमाद मे प्रसग से अथवा क्रोधादि अप्रशस्त भावो का उदय होने से स्थूल-अदत्तादान[1]-विरमण व्रत मे जो कोई अतिचार दिन मे लगे हो उन सब से मैं निवृत्त होता हू ॥१३॥

इस गाथा द्वारा तीसरे व्रत के पाँच अतिचारो का प्रतिक्रमण किया है, वे पाच अतिचार इस प्रकार ह—(१) चोरी का माल खरीद कर चोर को सहायता पहुचाना, (२) बढिया नमूना दिखलाकर उसके बदले मे घटिया चीज देना या मिलावट करके देना, (३) अपने राजा की आज्ञा बिना उसके वैरी के देश मे व्यापार के लिए जाना अथवा चुगी आदि महसूल दिये बिना किसी चीज का छिपाकर लाना, लेजाना या मना करने पर भी दूसरे देशो मे जाकर राज्य विरुद्ध हल-चल करना,

१ सूक्ष्म और स्थूल से अदत्तादान दो प्रकार का है। मालिक की आज्ञा के बिना भी जिन चीजो को लेने पर लानेवाला चोर नही समझा जाता जैसे मिट्टी का ढेला-घास आदि मामूली चीजो को, उनके स्वामी की आज्ञा के बिना लेना सूक्ष्म अदत्तादान है। इसका त्याग गृहस्थ के लिए कठिन है। इसलिए वह स्थूल अदत्तादान का अर्थात् जिन्हें मालिक की आज्ञा के बिना लेने वाला चोर कहलाता है ऐसे पदार्थों का उनके मालिक की आज्ञा के बिना लेने का त्याग करता है। यह तीसरा अणुव्रत है।

अदत्तादान शब्द=अ+दत्त+आदान। इस प्रकार बना है। इससे स्पष्ट अर्थ यह बनता है कि अ=नहीं, दत्त=दिया हुआ, आदान=लेना। अर्थात् मालिक के दिये बिना किसी वस्तु का लेना चोरी है।

(४) तराजू बाट आदि सही-मही न रखकर काम देना, ज्यादा लेना, छोटे-बड़े माप रखकर न्यूनाधिक लेना देना। ये अतिचार सेवन करने से मुझे दिन भर मे जो कोई दोष लगे हो उनसे मैं निवृत्त होता हू ॥१४॥

(चौथे अणुव्रत के अतिचारों की आलोचना)

चउत्थे अणुव्वयम्मि, निच्चं परदारगमणविरईओ।
आयरियमप्पसत्थे, इत्थ पमायप्पसंगेणं ॥१५॥
अपरिग्गहिआइत्तर, अणंगवीवाहतिव्वअणुरागे।
चउत्थवयस्सइआरे, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥१६॥

शब्दार्थ

इत्थ—यहाँ, अब
चउत्थे—चौथे
अणुव्वयम्मि—अणुव्रत के विषय मे
निच्चं—नित्य
परदारगमणविरईओ—पर स्त्री गमन विरति रुप
पमाएप्पसंगेणं—प्रमादश होकर
अपसत्थे—अप्रशस्त भाव से
आयरिअं—अतिचार किया हो
अपरिग्गहिया—अपरिगृहीता, किसी ने ग्रहण न की हुई अथवा शादी की हुई न हो
इत्तर—किसी की थोड़े वक्त तक रखी हुई स्त्री के साथ संबंध
अणंग—काम क्रीड़ा, काम वासना जागृत करने वाली क्रिया
विवाह—किसी के पुत्र-पुत्री का विवाह करना
तिव्वअणुरागे—विषय भोग करने की अत्यन्त आसक्ति
चउत्थवयस्स—चौथे व्रत के
इआरे—अतिचार
पडिक्कमेदेसिअंसव्वं—दिन मे लगे हुए उन सब दोषो से निवृत्त होता हूं।

भावार्थ—अब चौथे अणुव्रत के विषय मे (लगे हुए अतिचारो का प्रतिक्रमण किया जाता है) यहाँ प्रमाद के प्रसंग से अथवा क्रोधादि

अप्रशस्त भाव के उदय होने से नित्य अपनी विवाहित स्त्री के सिवाय कोई भी दूसरी (अन्य पुरुष से विवाहिता-सग्रहित स्त्री, कु वारी अथवा विधवा, वैश्या अथवा पासवान) स्त्री गमन (मैथुन)[1] विरति मे अतिचार लगे ऐसा जो कोई आचरण किया हो, उससे मैं निवृत्त होता हू ॥१५॥

(१) किसी से ग्रहण न की हुई अथवा अविवाहित हो ऐसी स्त्री से जैसे कन्या, विधवा आदि से सम्बन्ध करना, (२) अल्पकाल के लिये ग्रहण करने मे आई हुई स्त्री अर्थात् रखात (पासवान) अथवा वैश्या से

---

१ मैथुन दो प्रकार का है—सूक्ष्म और स्थूल (१) काम के उदय से इन्द्रियो को कुछ विकार आदि हो वह सूक्ष्म मैथुन कहलाता है। (२) मन, वचन, शरीर द्वारा औदारिक अथवा वैक्रीय स्त्री के साथ मैथुन करना स्थूल मैथुन कहलाता है। अथवा मैथुन की विरति रूप जो ब्रह्मचर्य व्रत है वह दो प्रकार का है—सव तथा देश से। (१) सब प्रकार से मन, वचन तथा शरीर से सब स्त्रियो के सग का त्याग करना, यह सव से ब्रह्मचय कहलाता है। (२) सवथा सव स्त्रियो का त्याग न करना वह देश से ब्रह्मचय कहलाता है, वह इस प्रकार से समझना चाहिये—श्रावक-गृहस्थी सब प्रकार से मैथुन का त्याग नहीं कर सकता हो तो अपनी विवाहिता स्त्री के अतिरिक्त अन्य सब प्रकार के मैथुन का त्याग करे—वह देशव्रत ग्रहण करता है। इस व्रत का नाम स्व-दारा सतोष तथा पर-दारगमन विरमण व्रत है। पर का अथ है अपनी विवाहिता स्त्री के सिवाय अन्य मनुष्य की, देवी अथवा तिर्यंच की ऐसी स्त्रियो का फिर वे चाहे विवाहित हो अथवा रखात हो, विधवा हो, चाहे कु वारी हो, वैश्या हो, चाहे कोई अन्य हो उनके सेवन का त्याग करता हू।

उप-लक्षण से स्त्री को भी अपने विवाहित पति के अतिरिक्त उपर्युक्त अन्य पुरुषो अथवा दूसरे सव प्रकार के मैथुन का त्याग करना होता है, ऐसा समझें।

सम्बन्ध करना, (३) पर स्त्री के साथ काम क्रीड़ा जागृत करने वाली क्रिया जैसे कि चुम्बन, आलिगन, कुचमर्दन आदि दूसरी कोई भी काम चेष्टा करना. (४) अपने लड़के-लड़की अथवा आश्रितो के अतिरिक्त दूसरों के विवाह आदि करना-कराना, (५) विषय-भोग करने की अत्यन्त आसक्ति—ये पांच अतिचार चौथे व्रत के हैं ॥१६॥

(पांचवें अणुव्रत के अतिचारों की आलोचना)

इत्तो अणुव्वए पं, चमम्मि आयरिअमप्पसत्थम्मि ।
परिमाणपरिच्छेए, इत्थ पमायप्पसंगेणं ॥१७॥
धण[1]-धन्न[2]-खित्त[3]वत्थू,[4]-रुप्प सुवन्ने अ कुविअपरिमाणे
दुपए चउप्पयम्मि य, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥१८॥

---

१. धन चार प्रकार का है—गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य । गिन कर लेने योग्य वस्तुएं जैसे रुपये, नोट, सुपारी, नारियल आदि गणिम धन है । गुड़, केसर आदि तोल कर लेने योग्य धरिम धन है । घी, तेल, कपड़ा आदि मापकर लेने योग्य मेय धन है । सोना, रत्न आदि जो घिसकर, काटकर परीक्षा करके लिया जावे वह परिच्छेद्य धन है ।

२. धान्य—गेहूं, मूंग, उड़द, जौ, चावल आदि ।

३ क्षेत्र—तीन प्रकार का है—सेतु, केतु और उभय । जिस खेत मे कुएं आदि से अनाज पके वह सेतु, वर्षा के जल से पके वह केतु तथा कुए और वर्षा के जल से पके तो उभय कहलाता है ।

४. वास्तु-घर, दुकान आदि—यह भी तीन प्रकार का है खात, उच्छ्रित, खातोच्छ्रित । इसमे भोयरा आदि खात, उपरोपरी मजिले बनाना उच्छ्रित और जिनमे दोनो हो वह खातोच्छ्रित कहलाता है ।

शब्दार्थ

इत्तो—इसके बाद, यहाँ से अब
इत्थ—यह
परिमाणपरिच्छेए—परिग्रह परिमाण करने रूप व्रत में अतिचार लगे ऐसा
पचमम्मि—पाचवें
अणुव्वए—अणुव्रत के विषय में
पमायप्पसगेण—प्रमाद के प्रसग से
अप्पसत्थम्मि—अप्रशस्त भाव के उदय होने में
आयरिअ—जो कोई अतिचार किया हो
धण-धन्न-खित्त-वत्थू-रुप्प-सुवन्ने—धन, धान्य, क्षेत्र, वास्तु, चादी, सोना
अ—और
कुविअ—कुप्य ताबा, लोहा आदि अन्य धातुओं के अथवा शृ गार सज्जा के
परिमाणे—परिमाण के विषय में
दुपए—द्विपद, दास, दासी आदि मनुष्य तथा पक्षी आदि
चउप्पयम्मि—चतुष्पाद चौपाये, गाय भैंस आदि
पडिक्कमे देसिअ सव्व—दिन सबधी लगे हुए सब दूषणों से मैं निवृत्त होता हू।

भावार्थ—अब पाचवें अणुव्रत के विषय में (लगे हुए अतिचारों का प्रतिक्रमण करता हू) यहाँ प्रमाद के प्रसग से अथवा क्रोधादि अप्रशस्त भावों के उदय से परिग्रह[५]-परिमाण-व्रत (पाँचवें अणुव्रत) में जो अतिचार लगे ऐसा जो आचरण किया हो, उससे मैं निवृत्त होता हू ॥१७॥

---

५ परिग्रह दो प्रकार है—बाह्य और आभ्यतर। इसमें धन धान्य आदि का सग्रह यह बाह्य परिग्रह है और रागद्वेषादि आभ्यतर परिग्रह है। इन दोनों का सर्वथा त्याग साधु को होता है। परिग्रह का सर्वथा त्याग करना अर्थात् किसी चीज पर थोडी भी मूर्च्छा न रखना या इच्छा का पूर्ण निरोध करना गृहस्थ के लिये असभव है। इसलिये गृहस्थ सग्रह की इच्छा का परिमाण कर लेता है कि मैं अमुक चीज इतने परिमाण में ही रखूँगा, इससे अधिक नहीं, यह पाँचवाँ अणुव्रत है

धन, धान्य का; क्षेत्र, वास्तु का; सोने, चांदी का: अन्य धातुओं का अथवा शृंगार सज्जा का, मनुष्य, पक्षी तथा चौपाये पशुओं का परिमाण उल्लंघन करने से दिवस सम्बन्धी छोटे-बड़े जो अतिचार लगे हों, उन सब से मैं निवृत्त होता हूं ॥१८॥

(छठे व्रत के अतिचारों की आलोचना)

गमणस्स उ परिमाणे, दिसासु उड्ढं अहे अ तिरिअं च ।
वुड्ढि सइअंतरद्धा, पढमम्मि गुणव्वए निंदे ॥१९॥

शब्दार्थ

उड्ढं—उर्ध्व
अहे अ—अधो तथा
तिरिअं च—तिरछी
दिसासु—इन दिशाओ में
गमणस्स उ—जाने के
परिमाणे—परिमाण की
वुड्ढि—वृद्धि करना
सइअंतरद्धा—स्मृति का लोप होना
पढमम्मि—पहले
गुणव्वए निंदे—गुणव्रत में लगे अतिचारो की निंदा करता हूं ।

इसके अतिचारों की इन दो गाथाओं में आलोचना की गई है। वे अतिचार ये हैं :—

(१) जितना धन-धान्य रखने का नियम किया हो उससे अधिक रखना, (२) जितने घर, दुकान, खेत रखने की की प्रतिज्ञा की हो उससे ज्यादा रखना, (३) जितने परिमाण मे सोना, चांदी का नियम किया हो उससे अधिक रखकर नियम का उल्लंघन करना, (४) तांबा आदि धातुओ तथा शयन, आसन आदि अथवा शृंगार सामग्री आदि नियम से अधिक रखना, (५) द्विपद, चतुष्पद को नियमित परिग्रह से अधिक संग्रह के नियम का अतिक्रमण करना ।

भावार्थ—अब मैं पहले गुणव्रत दिक्परिमाण[1] व्रत के अतिचारो की आलोचना करता हू इस व्रत के पाच अतिचार हैं—

(१) ऊर्ध्व दिशा मे जाने का परिमाण लाघने से (२) तिर्यग् अर्थात् चारो दिशाओ तथा चारो विदिशाओ मे जाने का परिमाण लाघने से, (३) अधोदिशा-भोयरे, खान, कुए, समुद्र आदि अधोदिक् मे जाने का परिमाण लाघने से, (४) क्षेत्र का परिमाण बढ जाने से, (५) अथवा क्षेत्र का परिमाण भूल जाने से, पहले गुणव्रत मे जो अतिचार लगे हो उनको मैं निन्दा करता हू ॥१९॥

(सातवें व्रत के अतिचारो की आलोचना)

मज्जम्मि अ मसम्मि अ, पुप्फे अ फले अ गध-मल्ले अ।
उवभोगपरिभोगे, बीअम्मि गुणव्वए निंदे ॥२०॥
सच्चित्ते पडिबद्धे, अपोलदुप्पोलिय च आहारे।
तुच्छोसहिभक्खणया, पडिक्कमे देसिअ सव्व ॥२१॥

---

१ साधु सयमी होने से केवल कर्म निर्जरा के लिये जाते आते (विचरण करते) हैं। इसलिये यह सब जगह सयम के लाभ के निमित्त जघाचारण, विद्याचारण आदि लब्धि आदि का उपयोग करके भी जा सकते हैं। इसी प्रकार तीर्थ यात्रा आदि धर्म के लिये श्रावक-श्राविकाओ ने दिक्परिमाण व्रत लिया हो तो भी परिमाण का उल्लघन कर सकते हैं। इसमें उन्हें कोई भी दोष नही लगता। परन्तु लोभादि से व्यापार आदि इस लोक सम्बन्धी कार्य के लिये जाने मे, आरम्भ समारम्भ आदि के काम आदि करने से जीवहिंसा आदि अनेक दोष लगते हैं, इसलिये खुले रखे हुये क्षेत्र के सिवाय चौदह राजलोक मे विद्यमान जीवो की रक्षा रूप गुण के लिये यह दिग परिमाण रूप व्रत ग्रहण किया जाता है। इसमें सब दिशाओ मे अमुक योजन तक जाने का नियम करने को दिक्परिमाण कहते हैं।

इंगालीवणसाडी, भाडीफोडी सुवज्जए कम्मं ।
वाणिज्जं चेव य दंत-लक्खरसकेसविसविसयं ॥२२॥
एवं खु जंतपिल्लण, कम्मं निल्लंछणं च दवदाणं ।
सरदहतलायसोसं, असईपोसं च वज्जिज्जा ॥२३॥

शब्दार्थ

मज्जम्मि अ—मदिरा की विरति के विषय मे और
मंसम्मि अ—मांस की विरति के विषय मे तथा
च—मधु आदि अभक्ष्य एवं अनंत-काय की विरति के विषय मे
पुप्फे अ—फूल के विषय मे और
फले अ—फलो के विषय मे और
गंध-मल्ले अ—कस्तूरी,केसर,कपूर आदि गध के विषय मे तथा पुष्प माला आदि के विषय मे
उवभोगपरिभोगे—भोग-उपभोग करने मे
बीयम्मि गुणव्वए—दूसरे गुणव्रत में कोई अतिक्रमण हुआ हो उसकी
निंदे—मैं निंदा करता हू ।
सच्चित्ते—सचित्त (सजीव-चैतन्य वाले) आहार के भक्षण मे
पडिवद्धे—सचित्त प्रतिवद्ध आहार के विषय मे
अपोल—नही पका हुआ
दुप्पोलिअं—आधे पके हुए आहार के विषय मे
च—और
आहारे—आहार के भक्षण में
तुच्छोसहिभक्खणया—तुच्छौपधि के भक्षण में
देसिअंसव्व—दिन सम्वन्धी अति-चारो से
पडिक्कमे—मैं निवृत्त होता हूं
इंगाली—अंगार कर्म
वण—वन कर्म
साडी—शकट कर्म
भाडी—भाट कर्म
फोडी—स्फोट कर्म
कम्मं—इन पाँच कर्मो को
सुवज्जए—श्रावक छोड देवे
चेव—तथा
दंत-लक्ख-रस-केस-विसविसयं—दंत

लाख, रस, केश और विष सम्बन्धी
वाणिज्ज—व्यापार
एु—निश्चय
जंतपिल्लण-कम्म—यन्त्र से पीलने पीसने का काम
निल्लछण च—और निर्लाछन कम
दवदाण—दवदान, आग लगाने का काम
सरदहतलायसोस—सरोवर-द्रह तालाव, झील आदि को सुखा देने का काम
च—और
असईपोस—असती पोषण
वज्जिज्जा—श्रावक को छोड देने चाहिये।

भावार्थ—सातवां व्रत भोजन और कम दो तरह से होता है। भोजन मे मद्य मासादि जो बिलकुल त्यागने योग्य हैं उनका त्याग करके बाकी मे से अन्न, जल आदि एक ही बार उपयोग मे आने वाली वस्तुओ का तथा वस्त्र-पात्र आदि बार-बार उपयोग मे आने वाली वस्तुओ का परिमाण कर लेना। इसी तरह कर्म[1] (व्यापार धधा आदि)मे, अगर कर्मादि अतिदोष वाले कर्मों का त्याग करके बाकी के कर्मों का परिमाण कर लेना, यह उपभोग[2]परिभोग-परिमाण रूप दूसरा गुणव्रत अर्थात् सातवां व्रत है।

---

१ काम से भी श्रावक को मुख्यतया निरवद्य कम (व्यापार-धधादि) मे ही प्रवृत्ति करनी चाहिये। यदि ऐसा न बन पडे तो अत्यन्त सावद्य तथा विवेकी लोग जिसकी निन्दा करें ऐसे शराबादि मादक पदार्थों का, तथा ऐसे ही हिंसात्मक कर्मों का तो अवश्य ही त्याग करना चाहिये एव दूसरे कर्मो का भी परिमाण करना चाहिये। इस प्रकार दो प्रकार से भोगोपभोग अथवा उपभोग परिभोग नामक दूसरा गुणव्रत है। इसमे अनाभोगादि से जो कोई दोष लगा हो इसकी निन्दा करनी चाहिये।

२ यहाँ उपभोग का अथ—'उप' का अर्थ अन्दर अथवा एक बार होता है। 'भोग' का अर्थ काम मे लेना। अर्थात् जो वस्तु मुँह के अन्दर डाल कर खाने-पीने आदि के काम मे ली जाती है। वह एक बार ही काम मे आती है अत उपभोग की वस्तु कही जाती है। जैसे रोटी, दूध, पानी,

ऊपर की चार गाथाओं में से पहली गाथा में—मदिरा, मांस आदि वस्तुओं के सेवन मात्र की और पुष्प, फल, सुगन्धित द्रव्यादि पदार्थों का परिमाण से ज्यादा उपभोग-परिभोग करने की आलोचना की गई है।२०।

दूसरी गाथा में सावद्य आहार का त्याग करनेवाले को जो अतिचार लगते हैं उनकी आलोचना है। वे अतिचार इस प्रकार हैं:—

(१) निश्चित किये हुए परिमाण से अधिक सचित्त आहार के भक्षण में, (२) सचित्त से लगी हुई अचित्त वस्तु के जैसे वृक्ष से लगे हुए गोंद तथा बीज सहित पके हुए फल का अथवा सचित्त बीज वाले खजूर, आम आदि के भक्षण में, (३) अपक्व आहार के भक्षण में, (४) दुपक्व आहार के भक्षण में, (५) तथा तुच्छ औषधि-वनस्पतियों के भक्षण में दिवस सम्बन्धी छोटे-बड़े जो अतिचार लगे हों, उन सबसे मैं निवृत्त होता हूं।२१।

तीसरी और चौथी गाथा में पन्द्रह कर्मादान जो बहुत सावद्य होने के कारण श्रावक के लिये त्यागने योग्य हैं और उनको त्याग करने के लिये कहा है।

(१) अंगार कर्म, (२) वन कर्म, (३) शकट कर्म, (४) भाटक कर्म, (५)स्फोटक कर्म, (६)दंत वाणिज्य, (७) लाक्षा (लाख) वाणिज्य, (८)रस वाणिज्य (९)केश वाणिज्य, (१०) विष वाणिज्य, (११) यंत्र-पीलन कर्म, (१२) निलञ्छन कर्म, (१३) दव-दाण-कर्म, (१४)शोषण कर्म, (१५) और असती-पोषण-कर्म का त्याग करता हूं।।२२-२३।।

आदि। इसे भोग की वस्तु भी कहा है इसका अर्थ है जो वस्तु एक बार काम में आवे वह भोग की वस्तु है।

यहाँ परिभोग का अर्थ—'परि' का अर्थ है बार-बार अथवा बाहर ऐसा होता है। अर्थात् जो वस्तु बाहर से काम में ली जावे अथवा बार-बार काम में ली जावे—जैसे वस्त्र, पुष्प, स्त्री, खाट, बिछौना, जूता आदि ये परिभोग की वस्तुएँ कही जाती हैं। इन्हे उपभोग की वस्तु भी कहा है। यहाँ उपभोग का अर्थ है—बार-बार काम में आने वाली वस्तुएँ।

(आठवें व्रत के अतिचार की आलोचना)

सत्थग्गिमूसलजतग-तणकट्ठे मतमूलभेसज्जे ।
दिन्ने दवाविए वा, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥२४॥

शब्दार्थ

सत्थग्गिमुसलजतग-तणकट्ठे—शस्त्र, अग्नि, मूसल, चक्की, तृण और काष्ट के विषय में।

मतमूलभेसज्जे—मत्र, मूल तथा औषधि के विषय में।

दिन्ने दवाविए वा—दूसरो को देते हुए और दिलाते हुए।

पडिक्कमे देसिअं सव्वं—दिन सबधी लगे हुए सब दूषणों से निवृत्त होता हू।

भावार्थ—अब आठवें व्रत मे लगे हुए अतिचारों की आलोचना करता हू। शस्त्र, अग्नि, मूसल आदि कूटने के साधन, चक्की आदि दलने, पीसने के साधन, विभिन्न प्रकार के तृण, काष्ठ, मूल और औषधि आदि (बिना कारण) दूसरो को देते हुए और दिलाते हुए (सेवित अनर्थदण्ड से) दिवस सम्बन्धी छोटे-बड़े जो अतिचार लगे हों, उन सबसे मैं निवृत्त होता हू ॥२४॥

(प्रमादाचरण की आलोचना)

ण्हाणुव्वट्टणवन्नग-विलेवणे सद्दरूवरसगधे ।
वत्थासणआभरणे, पडिक्कमे, देसिअं सव्वं ॥२५॥

शब्दार्थ

ण्हाण—स्नान करना

उव्वट्टण-उद्वर्तन—उबटन लगाकर मैल उतारना

वन्नग—रग लगाना, चित्रकारी करना, रगीन चूर्ण

विलेवणे—विलेपन

सद्दरूवरसगधे—शब्द, रूप, रस और गध के भोगोपभोग के विषय मे

वत्थ—वस्त्र के विषय म

आसन—आसन के विषय म

आभरणे—आभूषण के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो
देसिअं—दिन सम्बन्धी
सव्वं—सब दोषो का
पडिक्कमे—प्रतिक्रमण करता हूं निवृत्त होता हूं।

भावार्थ—स्नान, उवटन, वर्णक, विलेपन, शब्द, रूप, रस, गंध वस्त्र, आसन और आभरण के विषय में सेवित अनर्थदंड[1]से दिन संबंधी जो छोटे-बड़े अतिचार लगे हों उन सबसे मैं निवृत्त होता हूं ॥२५॥

---

१. अनर्थ अर्थात् क्षेत्र, घर, धन-धान्य, शरीर तथा स्वजन परिजन आदि के प्रयोजन बिना अपनी आत्मा को जो दंड (दोष) लगे यानि बिना प्रयोजन अपनी आत्मा पापकर्म का उपार्जन करे उसे अनर्थ-दंड कहते हैं। यह चार प्रकार का है :—

१. अपध्यान, २. पापोपदेश, ३. हिंस्र प्रदान और ४. प्रमादाचरित इनमे (१) आर्त्त और रौद्र ध्यान अपध्यान कहलाते है, (२) पाप कार्यों के लिये उपदेश देना, (३) हिंस्र प्रदान कार्य गाथा २४ में कहे है। (४) प्रमादाचरण कार्यों को इस गाथा २५ मे कहा है जो इस प्रकार है—

(१) अयतना से स्नानादि करना अर्थात् त्रस जीवो वाली भूमि पर अथवा जीव उड़-उडकर आकर जिस भूमि पर पड़ते हों ऐसी भूमि पर अथवा जल को वस्त्र से अच्छी तरह छाने बिना स्नान करना; (२) उवटन-त्रस जीव सहित उवटन आदि शरीर पर मल कर मैल उतारा हो अथवा उतारा हुआ मैल और मले हुए उवटन आदि को राख आदि मे पर ठव्या (डाला) न हो (राख में न डालने से इसमें जोवोत्पत्ति होती है; पैरों आदि से कुचले जाने से जीव विराधना भी सभव है), (३) रंग लगाने से कस्तूरी चंदन आदि कपोल आदि अवयवो पर यतना बिना लगाने से प्राणियो की विराधना होती है। (४) विलेपन-यतना बिना चंदन केसर आदि का विलेपन करने से संपातिम (उड़-उड़कर आने वाले) जीवों की विराधना संभव है। (५) शब्द-रात्रि को शोर मचाने अथवा जोर-जोर से बोलने से दुष्ट जीव जागृत होकर हिंसा करेंगे अथवा अन्य सोते हुए लोगो की नींद हराम होगी; इससे उन्हे क्लेश होगा। (६) स्त्री आदि के रूप शृंगार की बाते करके काम विकार जागृत कराना। इसी प्रकार प्रलोभन मे डालने के लिए रस, गंध, वस्त्र, आसन, आभूषणों आदि का

[आठवें (तीसरे गुणव्रत) अनर्थदंड विरमण व्रत के अतिचारों की आलोचना]

कंदप्पे कुक्कुइए, मोहरिअहिगरणभोगअइरित्ते ।
दंडम्मि अणट्ठाए, तइयम्मि गुणव्वए निंदे ॥२६॥

शब्दार्थ

कंदप्पे—कंदर्प के विषय में, काम विकार के विषय में	भोगअइरित्ते—वस्त्र पात्र आदि चीजों को जरूरत से ज्यादा रखना
कुक्कुइए—कौत्कुच्य के विषय में, भांड की तरह हंसी दिल्लगी के विषय में	दण्डम्मिअणट्ठाए—अनर्थदंड विरमण व्रत नाम के
मोहरि—मौखर्य, निरर्थक बोलना	तइयम्मि—तीसरे
अहिगरण—सजे हुए औजार या हथियार तैयार रखना	गुणव्वए—गुणव्रत के विषय में
	निंदे—मैं निंदा करता हूं

भावार्थ—अनर्थदण्ड विरमण व्रत नाम के तीसरे गुणव्रत के विषय में लगे हुए अतिचारों की मैं निंदा करता हूं। इस व्रत के पांच अतिचार हैं—

(१) इन्द्रियों में विकार पैदा करने वाली कथाएं कहना अथवा हास्यादि वचन बोलना, (२) भृकुटी, नेत्र, हाथ, पग आदि द्वारा विट पुरुषों जैसी हास्य जनक चेष्टाएं करना, हंसी, दिल्लगी या भांडों की तरह

वर्णन करना तथा आलस्य से पानी, आचार, घी, तेल, मीठा आदि के पात्र खुले रखना। साफ तथा स्वच्छ मार्ग को छोड़कर हरितकाय तथा अन्य जीवों वाली भूमि पर चलना, पानी आदि डालना, यतना बिना दरवाजे आदि बन्द करना, प्रयोजन बिना पत्र पुष्पादि तोड़ना इत्यादि कार्यों में प्रमादाचरण का समावेश होता है। इन सबका यहां प्रतिक्रमण किया जाता है।

नकले करना। (३) अधिक बोलना, व्यर्थ बोलना, आवश्यकता से अधिक बोलना, असभ्य और सम्बन्ध रहित बोलना, (४) शस्त्र आदि तैयार रखना अथवा चक्की और हत्था, हल और फलक, धनुष और बाण आदि वस्तुएं साथ-साथ रखना, (५) भोगोपभोग की वस्तु जितनी अपने लिये आवश्यक हो इससे अधिक रखना। ये क्रमशः (१) कदर्प, (२) कौत्कुच्य, (३) मौखर्य, (४) अधिकरणता; (५) भोगातिरिक्तता नाम के पाँच अतिचार हैं। २६

[नवें (सामायिक) व्रत के अतिचारों की आलोचना]

तिविहे दुप्पणिहाणे, अणवट्ठाणे तहा सइविहूणे।
सामाइय वितहकए, पढमे सिक्खावए निंदे ॥२७॥

शब्दार्थ

तिविहे—तीन प्रकार के
दुप्पणिहाणे–दुष्ट-प्रणिधान-अर्थात् मन, वचन और काया का अशुभ व्यापार
अणवट्ठाणे—अनवस्थान
तहा—तथा
सइविहूणे—स्मरण न रहने से
सामाइय—सामायिक[1]
वितह कए–सम्यक प्रकार से पालन न किया हो, वितथ किया हो
पढमे—पहले
सिक्खावए—शिक्षा व्रत
निंदे—मैं निन्दा करता हूं।

भावार्थ—पहले शिक्षाव्रत मे सामायिक [1] को निष्फल करने वाले पॉच अतिचार हैं (१) मनो-दुष्प्रणिधान-मन को काबू मे रखना। मन

---

१. सावद्य व्यापार तथा दुर्ध्यान का त्याग कर समभाव में रहना और मन, वचन, काया की एकाग्रता रखना सामायिक नाम का पहला शिक्षा व्रत है। यदि राग-द्वेष का निमित्त हो तो भी समभाव में रहना आवश्यक है।

म घर, व्यापार आदि के कार्यो सबधी सावद्य व्यापार का चिंतन करना। (२) वचन-दुष्प्रणिधान-वचन का सयम न रखना—कर्कश आदि सावद्य वचन बोलना, (३) काय-दुष्प्रणिधान-काया की चपलता को न रोकना, प्रमार्जन तथा पडिलेहन न की हुई भूमि पर बैठना अथवा पैर आदि फैलाना, सिकोडना, चलना, फिरना आदि, (४) अन-वस्थान-अस्थिर बनना अर्थात् सामायिक का समय पूर्ण होने से पहले ही सामायिक पार लेना अथवा जैसे-तैसे अस्थिर मन से सामायिक करना, (५) स्मृतिविहीन-ग्रहण किये हुए सामायिक व्रत को प्रमादवश भूल जाना अथवा नींद आदि की प्रबलता के कारण अथवा गृहादिक व्यापार की चिंता के लिये शून्य मन हो जाने से 'मैंने सामायिक की है अथवा नही ?' यह सामायिक पारने का समय है या नही ? इत्यादि याद न आवे। ये पाच अतिचार प्रमाद की अधिकता के कारण अना-भोगादिक से होते है।

इन पाँचो मे से कोई भी अतिचार पहले शिक्षाव्रत-सामायिक व्रत मे लगा हो तो मैं यहा उसकी निन्दा करता हू। २७

(दसवें व्रत के अतिचारों की आलोचना)

आणवणे पेसवणे, सद्दे रूवे अ पुग्गलक्खेवे ।
देसावगासिअम्मि, बीए सिक्खावए निंदे ॥२८॥

शब्दार्थ

आणवणे-आनयन प्रयोग के विषय मे, बाहर से वस्तु मगाने से।

पेसवणे—प्रेष्य प्रयोग के विषय मे, वस्तु बाहर भेजने से।

सद्दे—शब्दानुपात के विषय मे आवाज करके उपस्थिति बतलाने से।

रूवे—रूपानुपात के विषय मे, हाथ आदि शरीर के अवयवों को दिखला करके।

पुग्गलक्खेवे—पत्थर, ककड आदि पुद्गल फेंकने से।

देसावगासिअम्मि—देशावकाशिक व्रत के विषय मे	**सिक्खावए**—शिक्षाव्रत मे ।
बीए—दूसरे	**निंदे**—मैं निन्दा करता हूं ।

भावार्थ—श्रावक का दसवां व्रत (दूसरा शिक्षाव्रत) देशावकाशिक[1] है । इस व्रत मे छठे व्रत मे जो यावज्जीव दिशाओ का परिमाण और सातवे व्रत मे भोग-उपभोग का परिमाण किया हो, उसका प्रतिदिन संक्षेप करना होता है ।

अथवा सब व्रतो का अमुक काल तक सक्षेप भी इस व्रत से किया जाता है । इस व्रत के पाँच अतिचार हैं ।

(१) आनयन प्रयोग—नियम की हुई हद के बाहर से कोई वस्तु मंगवानी हो तो व्रत भग के भय से स्वय न जाकर किसी के द्वारा उसे मगवा लेना । (२) प्रेष्य प्रयोग-नियमित हद के बाहर कोई चीज भेजनी हो तो व्रत भंग होने के भय से उसको स्वयं न पहुंचाकर दूसरे के द्वारा भेजना । (३) शब्दानुपात-नियमित क्षेत्र के बाहर रहे हुए किसी व्यक्ति को अपने कार्य के लिये साक्षात बुलाया न जा सके तो खासी खंखार आदि जोर से शब्द करके उसे अपने स्वरूप-कार्य को बतलाना अथवा बुला लेना । (४) रूपानुपात—नियमित क्षेत्र के बाहर से किसी को बुलाने की इच्छा हुई तो व्रत भंग के भय से स्वयं न जाकर हाथ, मुँह आदि अग दिखा कर उस व्यक्ति को आने की सूचना दे देना अथवा सीढी आदि पर चढकर दूसरे का रूप देखना । (५) पुद्गलक्षेप-नियमित क्षेत्र के बाहर ढेला, पत्थर आदि फैंककर अपना कार्य बतलाना अथवा अभिमत व्यक्ति को बुला लेना ।

ये पाँच अतिचार दूसरे शिक्षा-व्रत—देशावकाशिक[1] व्रत के है । इन अतिचारो मे से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो उनकी मै निन्दा करता हूं ।[2] । २८ ।

---

१. यह देशावकाशिक व्रत गमनादिक व्यापार से प्राणीवध आदि न

(ग्यारहवें व्रत के अतिचारों की आलोचना)

सथारुच्चारविही-पमाय तह चेव भोयणाभोए।
पोसहविहिविवरीए, तइए सिक्खावए निंदे ॥२६॥

शब्दार्थ

सथार—सथारे की।	पमाय—प्रमाद हो जाने से
उच्चार—लघुनीति-बडी-नीति की, पेशाब और टट्टी की	तह—तथा
	चेव—इसी तरह
विही—विधि।	भोयणाभोए-भोजनादि की चिंता-

होने देने के लिये ग्रहण किया जाता है। गमनादि व्यापार स्वय करना अथवा दसरो से कराना समान ही है। किन्तु स्वय गमनादि करने से ईर्यापथ की शुद्धि आदि गुणो का होना सभव है, पर दूसरे नौकरादि से कराने से ईर्या समिति आदि असभव होने से अधिक दोष लगना सभव है। इसलिये ऐसे आनयनादि अतिचार करने योग्य नही है। परन्तु 'मैं स्वय गमनादि करूँगा तो व्रत भग होगा" इस प्रकार व्रत की अपेक्षा से अथवा अनाभोगादि द्वारा प्रवृत्ति करने से अतिचार लगता है।

यहा यदि किसी को ऐसी शका हो कि—सब व्रतो का सक्षेप करना यह भी देशावकाशिक कहलाता है ऐसा आपने कहा है परन्तु यहाँ जो अतिचार कहे हैं वे दिग्विरति व्रत के सक्षेप को लागू पडते हैं। दूसरे व्रतो के सक्षेप को लागू नही पडते ? इसका जवाब यह है कि—प्राणातिपात विरमण आदि सब व्रतो के सक्षेप करने मे जो वध-बधादि अतिचार कहे हैं वे ही इस व्रत मे भी ग्रहण करने है। इसलिये जुदा नही कहे तथा दिक्व्रत क सक्षेप मे तो क्षेत्र का सक्षेप होने से आनयन प्रयोगादि जुदा भी सभव हो सकते है। इसलिय ये जुदा कहे हैं।

२—वर्त्तमान की प्रवृत्ति के अनुसार देशावकाशिक व्रत का पालन करने के लिये उपवास अथवा एकासना आदि करके आठ सामायिक तथा दो प्रतिक्रमण करने की प्रथा है।

विचार द्वारा	तइएसिक्खावए—तीसरे शिक्षा-व्रत की
पोसहविहिविवरीए—पौषध विधि की विपरीतता	निंदे—मैं निन्दा करता हूं ।

भावार्थ—श्रावक का ग्यारहवां व्रत पौषधोपवास नामक तीसरा शिक्षाव्रत है । पौषधोपवास शब्द—पौषध+उपवास से बना है । 'पोष' अर्थात् धर्म की पुष्टि को "धत्ते"—धारण करे उसे पौषध कहते हैं । उपवसन का अर्थ है—उसके द्वारा रहना । अर्थात् धर्म की पुष्टि को धारण करे, उस आचरण के द्वारा रहना यह पौषधोपवास कहलाता है । अथवा अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्व तिथि मे सब सांसारिक कार्यों का त्याग कर उपवास करने को भी पौषधोपवास कहते हैं । इस व्रत मे आहार, शरीर सत्कार, मैथुन तथा सावद्य व्यापार इन चारो का त्याग करना होता है । इसके पांच अतिचार है—

(१) संथारा तथा वसति आदि चक्षु से नही देखने अथवा साव-धानी से ध्यानपूर्वक नही देखने से प्रमाद करना । (२) संथारा तथा वसति आदि को चरवले आदि से प्रमार्जन न करने से अथवा बराबर सावधानी से प्रमार्जन न करने से प्रमाद करना । (३) लघुनीति (पैशाब) बड़ी नीति (दस्त) आदि करने की जगह को चक्षु से नही देखने से अथवा सावधानी से ध्यानपूर्वक न देखने से प्रमाद करना । लघु-नीति आदि करने की जगह को चरवले आदि से प्रमार्जन न करने से अथवा बराबर प्रमार्जन न करने से प्रमाद करना । (५) भोजन आदि की चिन्ता करना कि कब व्रत पूरा हो और कब मैं अपने लिये अमुक चीज बनाऊं और खाऊं । उपलक्षण से शरीर सत्कार आदि के विषय में भी ऐसे विचार करने से प्रमाद करना । इस प्रकार इन पांच अतिचारों मे से पौषधोपवास व्रत मे कोई अतिचार लगा हो उसकी मैं निन्दा करता हूं ॥२९॥

(बारहवें व्रत के अतिचारों की आलोचना)

सच्चित्ते निक्खिवणे, पिहिणे ववएसमच्छरे चेव ।
कालाइक्कमदाणे, चउत्थे सिक्खावए निंदे ॥३०॥

शब्दार्थ

सच्चित्ते—सचित्त वस्तु पर
निक्खिवणे—डालने से, रखने से
पिहिणे—सचित्त वस्तु से ढाँकने से
ववएस—पराई वस्तु को अपनी और अपनी वस्तु को पराई कहने से।
मच्छरे—मात्सर्य-ईर्ष्या करने से
चेव—और
कालाइक्कमदाणे—समय बीत जाने पर आमंत्रण करने से
चउत्थे—चौथे
सिक्खावए—शिक्षाव्रत में दूषण लगा उसकी
निंदे—मैं निन्दा करता हूं।

भावार्थ—साधु, श्रावक आदि सुपात्र अतिथि को देश, काल का विचार करके भक्ति पूर्वक देने योग्य अन्न, जल आदि देना यह अतिथि संविभाग[1] नामक चौथा शिक्षाव्रत अर्थात् श्रावक का बारहवाँ व्रत है। इसके पाँच अतिचार हैं जो इस प्रकार हैं—

---

१ अतिथि संविभाग शब्द में मुख्य दो खण्ड हैं, अतिथि-संविभाग। तिथि से अतिथि शब्द बना है अर्थात् तिथि, पर्व आदि सब लौकिक व्यवहार का त्याग कर भोजन के समय भिक्षा के लिये जो आवे वह अतिथि कहलाता है। श्रावक तथा साधु ही अतिथि रूप होते हैं। उस अतिथि को संविभाग=सं+वि+भाग—अर्थात् 'सं'—संगत (उचित) आधाकर्मादि बैंतालीस दोष रहित 'वि'—विशेष प्रकार का—पश्चात् कर्मादि दोष को दूर करने के लिये सविशेष अन्न दान रूप 'भाग'—भाग देना—यह अतिथि संविभाग व्रत कहलाता है। अर्थात् न्यायोपार्जित, प्रासुक, एषणीय और कल्पनीय, अन्न, पान एवं वस्त्रादि का देश, काल, श्रद्धा, सत्कार तथा क्रम पूर्वक उत्कृष्ट भक्ति द्वारा अपनी आत्मा के

(१) साधु को देने योग्य अन्न-पानादि वस्तु को नही देने की बुद्धि से अथवा अनाभोग से या सहसाकारादि से सचित्त पदार्थ पर रखकर देना अथवा अचित्त वस्तु मे सचित्त वस्तु डाल देना यह पहला सचित्त निक्षेपण अतिचार है। (२) अचित्त वस्तु को सचित्त वस्तु से ढक देना यह सचित्त पिधान अतिचार है। (३) न देने की बुद्धि से अपनी वस्तु को पराई कहना और देने की बुद्धि से पराई वस्तु को अपनी कहना अथवा साधु की मागी हुई वस्तु अपने घर होने पर भी "यह वस्तु अमुक आदमी की है वहाँ जाकर माँगो" ऐसा कहना अथवा अवज्ञा से दूसरे के पास से दान दिलावे अथवा मरे हुए या जीवित पिता आदि को इस दान का पुण्य हो इस उद्देश्य से देवे यह तीसरा 'व्यपदेश' नामक अति-चार है। (४) मत्सर आदि कषाय पूर्वक दान देना, यह चौथा मत्सरता नामक अतिचार है। (५) समय बीत जाने पर भिक्षा आदि के लिये निमंत्रण करना, यह कालातिक्रम नामक पाँचवा अतिचार है। इनमें से कोई अतिचार लगा हो तो उसकी मैं निन्दा करता हूं। ३०

१. साधु साध्वी उत्तम सुपात्र, २. देश विरति श्रावक-श्राविका मध्यम सुपात्र, अविरत सम्यग्दृष्टि श्रावक-श्राविका जघन्य सुपात्र है। अतिथि संविभाग सुपात्र का ही किया जाता है।

अनुग्रह की बुद्धि से साधु को दान देना। इसका नियम लेना—यह अतिथि संविभाग व्रत कहलाता है।

यह व्रत पौषध के पारणे तो अवश्य लेने का है अर्थात् पौषध के पारणे के दिन साधु को दान देने के बाद स्वयं भोजन करना चाहिये। यदि साधु का योग न हो तो भोजन के समय द्वार की तरफ देखकर शुद्ध भाव से भावना करनी चाहिये कि—"यदि साधु महाराज होते तो मुझे आज बहुत लाभ होता—मेरा कल्याण होता।" इत्यादि भावना करके भोजन करना चाहिये। अथवा श्रावक का अतिथि संभाग करके भोजन करना चाहिये।

पौषध के पारणे के सिवाय अन्य दिनों मे भी साधु को दान देकर भोजनादि करना अथवा भोजनादि करके बाद मे दान देना इसके लिए कोई प्रतिबन्ध नही है। अर्थात् भोजन के बाद अथवा पहले किसी भी समय श्रावक अथवा साधु का "अतिथि संविभाग" कर सकते है। पूनिया श्रावक तो प्रतिदिन अतिथि संविभाग करके भोजन करता था।

(बारहवें व्रत में समाविष्ट अन्य अतिचारों की आलोचना)

सुहिएसु अ दुहिएसु अ, जा मे अस्सजएसु अणुकंपा।
रागेण व दोसेण व, तं निंदे तं च गरिहामि ॥३१॥

शब्दार्थ

सुहिएसु—सुविहितों पर सुखियों पर	अणुकंपा—दया, भक्ति, अनुकम्पा
अ—और	रागेण—राग से, ममत्व से
दुहिएसु—दुखियों पर	व—अथवा
अ—तथा	दोसेण—द्वेष से
जो—जो	तं—उसकी
मे—मैंने	निंदे—मैं निन्दा करता हूं
अस्सजएसु—असंयतापर, अस्वयतों पर	गरिहामि—गुरु के समक्ष गर्हा करता हूं

भावार्थ—(१) ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुणों वाले ऐसे सुविहित साधुओं पर अथवा, वस्त्र—पात्रादि उपाधि (उपकरण) यथायोग्य होने से ऐसे सुखी साधुओं पर, (२) व्याधि से पीडित, तपस्या से खिन्न या वस्त्र-पात्रादि यथायोग्य उपधि से विहीन होने से दुखी साधुओं पर, (३) (जो गुरु की निश्राआज्ञा अनुसार वर्तते हैं उन्हें अस्वयत कहते हैं ऐसे) अस्वयत साधुओं पर अथवा जो संयमहीन है, पासत्यादि है, या अन्य मत के कुलिंगी ऐसे असंयत साधुओं पर, यदि मैंने राग से अथवा द्वेष से भक्ति की हो अर्थात् चारित्रादि गुण की बुद्धि बिना ही (गुणों को दृष्टि में न रखकर) यह साधु मेरा सम्बन्धी है, कुलीन है, या प्रतिष्ठित है इत्यादि राग (ममत्व) के वश होकर भक्ति अनुकंपा की हो अथवा यह साधु धन-धान्यादि रहित है, कंगाल है, जाति से निकाला हुआ है, भूख से पीडित है, इसके पास कोई भी निर्वाह का साधन नहीं, निलज्ज होकर बार-बार आता है, यह घिनौना है, इसको कुछ देकर जल्दी निकाल दो इत्यादि

घृणा पूर्वक या निन्दा पूर्वक या द्वेष पूर्वक वस्त्र-पात्र अन्न, पानी आदि देकर अनुकम्पा की हो उसकी मैं निन्दा करता हूं और गुरु की साक्षी से गर्हा करता हू ॥३१॥

(जो साधुओं के लिये करने योग्य न किया हो उसकी आलोचना)

साहूसु संविभागो, न कओ तवचरणकरणजुत्तेसु ।
संते फासुअदाणे, तं निंदे तं च गरिहामि ॥३२॥

शब्दार्थ

साहुसु—साधुओ के विषय मे
संविभागो—अतिथि संविभाग
न कओ—न किया हो
तव—तप
चरणकरण—चरण-करण से
जुत्तेसु—युक्त
संते—होने पर भी
फासुअदाणे—प्रासुक, अचित्त, साधु को देने योग्य न दिया हो
तं निंदे—उसकी मैं निन्दा करता हूं।
तं च—तथा उसकी
गरिहामि—मैं गुरु की साक्षी से गर्हा करता हूं।

भावार्थ—निर्दोष अन्न-पानी आदि साधु को देने योग्य वस्तुएं अपने पास उपस्थित होने पर भी तपस्वी, चारित्रशील, क्रियापात्र साधु का योग होने पर भी मैंने प्रमादादि के कारण उसे दान न दिया हो तो ऐसे दुष्कृत्य की मैं निन्दा करता हूं और गुरु महाराज की साक्षी में गर्हा करता हूं ॥३२॥

[सलेखना (अनशन) व्रत के अतिचारों की आलोचना]

इहलोए परलोए, जीविअमरणे अ आसंसपओगे ।
पंचविहो अइयारो, मा मज्झं हुज्ज मरणंते ॥३३॥

शब्दार्थ

इहलोए—इस लोक की
परलोए—परलोक की
जीविअ—जीवित रहने की, जीने की
मरणे—मरने की
अ च—और काम भोग की
आसस—इच्छा का
पओगे—करने मे
पचविहो—पाँच प्रकार का
अइयारो—अतिचार
मा—मत, ना
मज्झ—मुझ को
हुज्ज—हो
मरणते—मृत्यु के अन्तिम समय तक, मरण पर्यन्त

भावार्थ—सलेखना व्रत के पाँच अतिचार हैं —(१) इहलोकाशसा-प्रयोग, (२) परलोकाशसा-प्रयोग, (३) जीविताशसा-प्रयोग, (४) मरणाशसा प्रयोग और, (५) कामभोगाशसा-प्रयोग।

(१) धर्म के प्रभाव से इस मनुष्य लोक के सुख पाने की वाछा करना अर्थात् "मैं यहाँ से मर कर राजा अथवा सेठ आदि बनूँ इत्यादि सुख की वाछा करना यह पहला अतिचार है। (२) धर्म के प्रभाव से परलोक मे मैं देव अथवा इद्र बनूँ इत्यादि सुख की वाछा करना यह दूसरा अतिचार है। (३) अनशन करने के बाद भक्तजनो द्वारा किया हुआ अपना महोत्सव देखकर, सत्कार, सम्मान, बहुमान वन्दनादि देखकर, धार्मिक लोगो द्वारा की हुई अपने गुणो की प्रशसा सुनकर अधिक जीवित रहने की इच्छा करना यह तीसरा अतिचार है। (४) कठिन स्थान पर अनशन करने से, ऊपर कहे हुए बहुमान सत्कार आदि न होने से दुःख से घबडा कर, अथवा क्षुधादिक की पीड़ा आदि से मरने की इच्छा करना, यह चौथा अतिचार है। (५) मैं यहा से मर-कर इस तप के प्रभाव से रूपवान, सौभाग्यवान, ऋद्धिमान आदि बनूँ ऐसी कामभोग की इच्छा करना, यह पाचवा अतिचार है। ये पाँचो प्रकार के अतिचार मेरे मरणात तक अर्थात् अतिम श्वासोच्छ्वास तक न हो ऐसी भावना इस गाथा मे की गई है। उपलक्षण से सब प्रकार के धर्मानुष्ठानो मे इस लोक और परलोक सम्बन्धी सब प्रकार की वाछा

का त्याग करना चाहिये। क्योंकि आशंसा (वांछा) करने से उत्कृष्ट फल के बदले हीन फल की प्राप्ति होती है ॥३३॥

(सब अतिचार मन, वचन, काया द्वारा होते हैं इसलिये इन लगे हुए अतिचारों का इन्हीं तीनों से प्रतिक्रमण करने को कहते हैं—)

काएण काइअस्स, पडिक्कमे वाइअस्स वायाए ।
मणसा माणसिअस्स, सव्वस्स वयाइआरस्स ॥३४॥

शब्दार्थ

काएण—शुभ काय योग से
काइअस्स—काया द्वारा लगे हुए
पडिक्कमे—प्रतिक्रमण करता हूं निवृत्त होता हूं
वाइअस्स—वचन द्वारा लगे हुए योग से
वायाए—शुभ वचन योग से
मणसा—शुभ मन योग से
माणसिअस्स—मन द्वारा लगे हुए
सव्वस्स—सब
वय—व्रत
अइआरस्स—अतिचार का क्रमशः

भावार्थ—वध-बन्धादि अशुभ काय योग से लगे हुए व्रतातिचारों का तप तथा कायोत्सर्ग आदि रूप शुभ काययोग द्वारा प्रतिक्रमण[1] करता हूं। सहसा अभ्याख्यान आदि देने रूप अशुभ वचन योग से लगे हुए अतिचारो को मिथ्या दुष्कृतादि देने रूप शुभ वचन योग द्वारा प्रतिक्रमण[2] करता हूं। तथा शंका आदि से लगे हुए मानसिक अतिचारों को 'मैंने यह अनुचित चिंतन किया है' ऐसा विचार कर आत्म निन्दा करने

---

१. छह मास तक कायोत्सर्ग में रहे दृढप्रहारी के समान।

२. आनन्द श्रावक को श्री गौतम स्वामी ने मिथ्यादुष्कृत दिया था वैसे।

रूप शुभ मनोयोग से प्रतिक्रमण[3] करता हूँ। इस प्रकार सब व्रतों के अतिचारों का प्रतिक्रमण करना चाहिये ॥३४॥

(अब विशेष रूप से कहते हैं)

वंदणवयसिक्खा-गारवेसु, सन्नाकसायदंडेसु।
गुत्तीसु अ समिईसु अ, जो अइआरो अ तं निंदे ॥३५॥

शब्दार्थ

वंदण—वन्दन	अ—और
वय—व्रत	समिईसु—समितियों के विषय में
सिक्खा—शिक्षा	अ—और
गारवेसु—गौरव के विषय में	जो—जो
सन्ना—संज्ञा	अइआरो—अतिचार
कसाय—कषाय	अ—तथा
दंडेसु—दंड के विषय में	तं—उसकी
गुत्तीसु—गुप्तियों के विषय में	निंदे—मैं निन्दा करता हूँ

भावार्थ—वंदन[4], व्रत[5] शिक्षा[6], समिति[7] और गुप्ति[8] करने योग्य

---

३ मन द्वारा ही युद्ध करके सातवीं नरक के योग्य कर्म बाँधते हुए और फिर तुरंत आत्मनिन्दा आदि करके केवलज्ञान उपार्जन करने वाले प्रसन्नचन्द्र ऋषि के समान।

४ वन्दन दो प्रकार का है—चैत्यवन्दन और गुरुवन्दन।

५ व्रत—पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत इस प्रकार आगम में बारह व्रत।

६ शिक्षा—ग्रहण और आसेवना दो प्रकार की है—

है, इनको न करने से जो अतिचार लगे हों, तथा गौरव[9], संज्ञा[10] कषाय[11], और दंड[12] ये छोड़ने योग्य है, इनको करने से जो अति-चार लगे हो उनकी मैं निन्दा करता हू ॥३५॥

---

(१) ग्रहणा—जघन्य से अष्ट प्रवचन माता (पाँच समितियाँ और तीन गुप्तियाँ) और उत्कृष्ट दशवैकालिक सूत्र के षट्जीव-निकाय नामक चौथे अध्ययन तक अर्थ सहित सीखना। (सामायिक आदि सूत्र-अर्थ को सीखना, पढ़ना।)

(२) आसेवना—यम नियमो आदि का सेवन करना।

७. समिति—विवेक युक्त प्रवृत्ति करना—इसके पाँच भेद हैं :— इनका विवेचन आचार्य के ३६ गुणो मे कर दिया है।

८. गुप्ति—मनादि को असत्वृत्ति से रोकना और सत्वृत्ति में लगाना इसके तीन भेद है : इनका विवेचन भी आचार्य के ३६ गुणों में कर आये है।

९ गारव—अभिमान और लालसा को गारव (गौरव) कहते हैं—

इसके तीन भेद है—(१) ऋधि गारव, (२) रस गारव और (३) साता गारव।

(१) धन, पदवी आदि प्राप्त होने पर उसका अभिमान करना और प्राप्त न होने पर लालसा करना। (२) घी, दूध, दही आदि रसो की प्राप्ति होने पर उनका अभिमान करना और प्राप्त न होने पर लालसा करना। (३) सुख व आरोग्य मिलने पर उसका अभिमान करना और मिलने पर उसकी तृष्णा करना।

अथवा जाति, कुल, रूप, बल, श्रुत, तप लाभ तृष्णा ऐश्वर्यादि का मद करना।

(सम्यक्त्व का माहात्म्य)

समद्दिट्ठी जीवो, जइवि हु पाव समायरइ किंचि ।
अप्पो सि होइ बंधो, जेण न निद्धंधसं कुणइ ॥३६॥

शब्दार्थ

सम्मद्दिट्ठी—सम्यग्दृष्टि	**अप्पो**—अल्प, थोडा
जीवो—जीव, आत्मा	**सि**—उसको
जइवि—यद्यपि	**होइ**—होता है
हु—अवश्य, करना पडता है	**बंधो**—बन्ध, कर्मबंध
पाव—पाप को, पापमय प्रवृत्ति को	**जेण**—क्योंकि
समायरइ—करता है, आचरता है, आरम्भ करता है	**न**—नही
किंचि—कुछ	**निद्धंधसं**—निर्दयता पूर्वक
	कुणइ—करता है

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि जीव (गृहस्थ श्रावक) को यद्यपि (प्रतिक्रमण करने के अनन्तर भी) अपना निर्वाह चलाने के लिए कुछ पाप व्यापार अवश्य करना पडता है तो भी उसको कर्मबंध अल्प होता है क्योंकि वह निर्दयतापूर्वक पाप व्यापार नही करता ॥३६॥

---

१० संज्ञा—अभिलाषा को कहते हैं, इसके संक्षेप मे चार प्रकार हैं—
(१) आहार संज्ञा, (२) भय संज्ञा, (३) मैथुन संज्ञा और (४) परिग्रह संज्ञा।

११ कषाय—क्रोध, मान, माया, लोभ

१२ दंड—मन दंड, वचन दंड और काय दंड अथवा माया शल्य, निदान शल्य और मिथ्यादर्शन शल्य ये भी दंड कहलाते हैं। प्राणी जिसके द्वारा धर्मरूपी धन का नाश-अपहार कर दंडित हो वह दंड कहलाता है।

(दृष्टांत कहते है—)

तं पि हु सपडिक्कमणं, सप्परिआवं सउत्तरगुणं च ।
खिप्पं उवसामेई, वाहि व्व सुसिक्खिओ विज्जो ।।३७।।

शब्दार्थ

त—उसको, उस अल्प पापबंध को
पि—भी
हु—अवश्य
सपडिक्कमणं—प्रतिक्रमण द्वारा
सप्परिआवं—पश्चाताप द्वारा
सउत्तरगुण—प्रायश्चित रूप उत्तर गुण द्वारा
च—और
खिप्पं—जल्दी
उवसामेई—उपशांत करता है
वाहि—व्याधि
व्व—जैसे
सुसिक्खिओ—सुशिक्षित
विज्जो—वैद्य

भावार्थ—जिस प्रकार सुशिक्षित अनुभवी (कुशल) वैद्य व्याधि को शीघ्र शांत कर देता है वैसे ही सम्यक्त्वधारी सुश्रावक उस अल्पकर्म वन्ध को भी प्रतिक्रमण, पश्चाताप और प्रायश्चित रूप उत्तर गुण द्वारा जल्दी नाश कर देता है ।।३७।।

(इस विषय में अन्य दृष्टांत)

जहा विसं कुट्ठगयं, मंतमूलविसारया ।
विज्जा हणंति मंतेहिं, तो तं हवइ निव्विसं ।।३८।।
एवं अट्ठविहं कम्मं, रागदोससमज्जिअं ।
आलोअंतो अ निंदंतो खिप्पं हणइ सुसावओ ।।३९।।

शब्दार्थ

जहा—जैसे
विस—विष को
कुट्ठगय—पेट मे गये हुए
मंत-मूल-विसारया—मंत्र और जड़ी-बूटी के जानकार
विज्जा—वैद्य

हणंति—नष्ट करते हैं, उतारते हैं
मंतेहिं—मंत्रों द्वारा
तो—उससे
स—वह शरीर
हवइ—होता है
निव्विस—विष रहित
एव—वैसे ही
अट्ठविहं—आठ प्रकार के
कम्म—कर्म को
रागदोससमज्जिअं—राग-द्वेष से उपार्जित
आलोअंतो—आलोचना करता हुआ
अ—और
निंदंतो—निंदा करता हुआ
खिप्प—शीघ्र
हणइ—नष्ट करता है
सुसावओ—सुश्रावक

भावार्थ—जिस प्रकार गारुडिक मन्त्रों और जड़ी-बूटी को जानने वाला अनुभवी कुशल वैद्य रोगी के शरीर में व्याप्त स्थावर और जंगम विष को मन्त्रादि द्वारा दूर कर देता है और उस रोगी का शरीर विष रहित हो जाता है, उसी प्रकार राग-द्वेष से बांधे हुए ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार के कर्मों को सुश्रावक गुरु के पास आलोचना करके तथा अपनी आत्मा की साक्षी से निंदा करते हुए शीघ्र क्षय कर डालता है ॥३८-३९॥

(इसी बात को विशेष रूप से कहते हैं)

कयपावोवि मणुस्सो, आलोइअ निंदिअ गुरुसगासे ।
होइ अइरेगलहुओ, ओहरिअभरु व्व भारवहो ॥४०॥

शब्दार्थ

कयपावो—कृतपाप, पाप करने वाला
वि—भी
मणुस्सो—मनुष्य
निंदिअ—निंदा करके
गुरुसगासे—गुरु के पास
होइ—होता है, हो जाता है
अइरेगलहुओ—अत्यन्त हलका

आलोइअ—आलोचना करके	व्व—जिस प्रकार से
ओहरिअभरु—भार के उतर जाने पर	भारवहो—भारवाहक, कुली

भावार्थ—जिस प्रकार बोझा उतर जाने पर भारवाहक के सिर पर भार कम हो जाता है, उसी प्रकार गुरु के सामने पाप की आलोचना तथा आत्मा की साक्षी से निन्दा करने पर सुश्रावक के पाप अत्यन्त हल्के हो जाते है ॥४०॥

(प्रतिक्रमण करने का फल)

आवस्सएण एएण, सावओ जइवि बहुरओ होइ ।
दुक्खाणमंतकिरिअं, काही अचिरेण कालेण ॥४१॥

शब्दार्थ

आवस्सएण—आवश्यक द्वारा	होइ—होता है
एएण—इस	दुक्खाणं—दुःखों का
सावओ—श्रावक	अंतकिरिअं—क्षय, नाश, अंत
जइवि—यद्यपि	काही—करेगा
बहुरओ—बहुत रज वाला, बहुत कर्म वाला	अचिरेण—थोड़े ही
	कालेण—समय में

भावार्थ—यद्यपि श्रावक (सावद्य आरम्भों में आसक्त होने के कारण) बहुत कर्मों वाला होता है, तो भी इस आवश्यक (सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान) द्वारा अल्प समय में दु.खो का अन्त करेगा—मोक्ष पायेगा ॥४१॥

(विस्मरण हुये अतिचारों की आलोचना)

आलोअणा बहुविहा, न य संभरिआ पडिक्कमणकाले ।
मूलगुणउत्तरगुणे, तं निंदे तं च गरिहामि ॥४२॥

शब्दार्थ

आलोअणा—आलोचना	समय
बहुविहा—अनेक प्रकार की	मूलगुण—मूलगुण
न—नहीं	उत्तर गुणे—उत्तर गुण के विषय मे
य—और	त निंदे—उसकी मैं निंदा करता हू
समरिआ—याद आई हो	त च गरिहामि—तथा उसकी मैं
पडिक्कमण काले—प्रतिक्रमण के	गर्हा करता हू

भावार्थ—मूलगुण (पांच अणुव्रत) और उत्तरगुण (तीन गुणव्रत तथा चार शिक्षा व्रत) के विषय मे लगे हुए अतिचारो की आलोचना बहुत प्रकार की है, तथापि उन आलोचनाओं मे से जो कोई आलोचना प्रतिक्रमण करते समय याद न आई हो उसकी मैं आत्म साक्षी से निंदा करता हू और गुरु की साक्षी से गर्हा करता हू ॥४२॥

(भाव वन्दना)

तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्स—
अब्भुट्ठिओमि आराहणाए, विरओमि विराहणाए ।
तिविहेण पडिक्कंतो, वंदामि जिणे चउव्वीस ॥४३॥

शब्दार्थ

तस्स—उस	मि—मैं
धम्मस्स—धर्म की, श्रावक धर्म की	आराहणाए—आराधना के लिये
केवलि—केवलि भगवान् के द्वारा	विरओमि—हटा हू, विरत हुआ हू
पन्नत्तस्स—कहे हुए	विराहणाए—विराधना से
अब्भुट्ठिओ—तैयार, तत्पर, सावधान	तिविहेण—तीन प्रकार से, मन, वचन, काया से

पडिक्कंतो—निवृत्त होकर प्रतिक्रमण करके
वदामि—मैं वंदन करता हूं
जिणे—जिनेश्वरो को
चउव्वीसं—चौवीस

भावार्थ—मैं केवली भगवान् के कहे हुए श्रावक धर्म की आराधना के लिए तैयार हुआ हूं और उसकी विराधना से विरत हुआ (हटा) हूं। मैं सब प्रकार के अतिचारों का मन, वचन, काया से प्रतिक्रमण करके पापों से निवृत्त होकर श्री ऋषभदेव से लेकर श्री महावीर तक चौवीस तीर्थकरों को वन्दन करता हू ॥४३॥

(तीन लोक के शाश्वत तथा अशाश्वत जिन प्रतिमाओं को वंदन)

जावंति चेइआइं, उड्ढे अ अहे अ तिरिअलोए अ ।
सव्वाइं ताइं वंदे, इह संतो तत्थ संताइं ॥४४॥

शब्दार्थ

जावति चेइआइ-जितने जिनबिंब
उड्ढे—ऊर्ध्वलोक में
अ—और
अहे—अधोलोक मे
अ—तथा
तिरिअलोए—तिर्यगलोक में
अ—एवं
सव्वाइं ताइं—उन सबको
वंदे—मैं वन्दन करता हूं
इह—यहाँ
संतो—रहता हुआ
तत्थ—वहाँ
संताइं—रहे हुओ को

भावार्थ—ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिरछे लोक मे जितने भी चैत्य (तीर्थंकरो की मूर्तियाँ) है उन सबको मैं यहाँ रहता हुआ वहाँ रहे हुए (चैत्यो) को वन्दन करता हू ॥४४॥

(सर्व साधुओं को नमस्कार)

जावत के वि साहू भरहेरवयमहाविदेहे अ ।
सव्वेसिं तेसिं पणओ, तिविहेण तिदंडविरयाण ॥४५॥

शब्दार्थ

जावत—जो
के—कोई
वि—भी
साहू—साधु
भरहेरवयमहाविदेहे—भरत ऐरावत तथा महाविदेह क्षेत्र में
अ—और
सव्वेसिं तेसिं—उन सबको
पणओ—नमन करता हूं
तिविहेण—करना, कराना और अनुमोदन करना इन तीन प्रकारों से
तिदण्ड विरयाण—तीन दंड से जो विराम पाये हुए हैं उनको तीनदंड—मनदंड, वचन दंड कायदंड, मन से पाप करना-मनदंड, वचन से पाप करना-वचनदंड, शरीर से पाप करना—कायदंड

भावार्थ—भरत, एरावत और महाविदेह में विद्यमान जो कोई भी साधु मन, वचन और काया से पाप प्रवृत्ति करते नहीं, कराते नहीं, करते हुए का अनुमोदन नहीं करते, उन सबको मैं वंदन करता हूं ॥४५॥

(धर्मकथा आदि द्वारा जीवन व्यतीत हो)

चिरसंचियपावपणासणीइ, भवसयसहस्स महणीए ।
चउवीसजिणविणिग्गयकहाइ वोलंतु मे दिअहा ॥४६॥

शब्दार्थ

चिर—बहुत काल से, चिरकाल में
संचिय—इकट्ठे किये हुए
पाव—पापों का
पणासणीइ—नाश करने वाली
भव—भवों को, जन्मों को
सयसहस्स—लाखों
महणीए—मिटने वाली, मथन करने वाली

चउवीस—चोवीस
जिण—तीर्थंकरो से, जिनेश्वरो से
विणिग्गय—निकली हुई
कहाइ—कथा के द्वारा
वोलतु—वीते, व्यतीत हों
मे—मेरे
दिअहा—दिन

भावार्थ—चिरकाल से संचित पापो को नाश करने वाली तथा लाखों जन्म जन्मातरो का नाश (अंत) करने वाली और जो सभी तीर्थंकरो के पवित्र मुखकमल से निकली हुई है ऐसी सर्व हितकारक धर्म कथा मे ही; अथवा जिनेश्वरो के नाम का कीर्तन, उनके गुणो का गान और उनके चरित्रों का वर्णन आदि वचन की पद्धति द्वारा ही मेरे दिन-रात व्यतीत हों ॥४६॥

(जन्मान्तर में भी समाधि तथा बोधि की प्राप्ति के लिये प्रार्थना)

मम मंगलमरिहंता, सिद्धा साहू सुअं च धम्मो अ ।
सम्मद्दिट्ठी देवा, दिंतु समाहिं च बोहिं च ॥४७॥

शब्दार्थ

मम—मुझे
मंगलं—मगल रूप हो
अरिहंता—अरिहन्त
सिद्धा—सिद्ध
साहू—साधु
सुअ—श्रुत
च—और
धम्मो—धर्म
सम्मद्दिट्ठी देवा—सम्यग्दृष्टि देव
दिंतु—देवें, दो
समाहि—समाधि
च—तथा
बोहिं—बोधि, सम्यक्त्व
च—एवं

भावार्थ—अरिहन्त, सिद्ध, साधु, श्रुत धर्म (अंग, उपांग आदि शास्त्र)

और धर्म[1] (चारित्र धर्म) ये सब मेरे लिये मंगल रूप हों तथा सम्यग्दृष्टि देव समाधि (चित्त की स्थिरता) एवं बोधि (सम्यक्त्व) की प्राप्ति में मेरे सहायक हों ॥४७॥

पडिसिद्धाण करणे, किच्चाणमकरणे अ पडिक्कमण।
असद्दहणे अ तहा, विवरीयपरूवणाए अ ॥४८॥

शब्दार्थ

पडिसिद्धाण—निषेध किये हुए को	अ—एव
करणे—करने पर	तहा—तथा
किच्चाण—करने योग्य को	विवरीय—विपरीत, आगम से विरुद्ध
अकरणे—नहीं करने पर	परूवणाए—प्ररूपणा करने पर
अ—और	अ—और
पडिक्कमण—प्रतिक्रमण	
असद्दहणे—अश्रद्धा करने पर	

---

१ यहाँ यदि कोई प्रश्न करे कि 'चत्तारि मंगलानि'—इत्यादि में—अरिहंत, सिद्ध, साधु तथा धर्म ये चार मंगल कहे हैं। पर यहाँ पर अरिहन्त, सिद्ध, साधु, श्रुत तथा धर्म ये पाँच कहे हैं सो यहाँ पर श्रुत अधिक क्यों कहा है ?

इसका उत्तर देते हैं कि यहाँ पर श्रुत का समावेश भी धर्म में ही हो जाता है, 'वंदितु सूत्र' के कर्ता ने यहाँ पर श्रुत—'ज्ञान धर्म' तथा धर्म—'चारित्र-धर्म' इस प्रकार से धर्म के दो विभाग किये हैं। इसका हेतु यह है कि ज्ञान तथा क्रिया दोनों साथ रहकर ही मोक्ष का साधन हैं। न चारित्रहीन ज्ञान और न ज्ञानहीन क्रिया (अज्ञान क्रिया) मोक्ष का साधन हो सकते हैं। कहा है—"ज्ञानक्रियाभ्याम् मोक्ष ।" ऐसा जानने के लिये यहाँ धर्म के दो भेद जुदा करके लिखे हैं।

भावार्थ—आगम[2] मे निषेध किये हुए स्थूल हिंसादि पाप कार्यों को करने पर और सामायिक, देव पूजा आदि करने योग्य कार्यों को नही करने पर जो दोष लगे हो उनको दूर करने के लिए प्रतिक्रमण किया जाता है। तथा जैन तत्त्वों मे अश्रद्धा करने पर एवं जैनागम मे विरुद्ध प्ररूपणा करने पर जो पाप लगे हो उनको हटाने के लिए प्रतिक्रमण[3] किया जाता है ॥४८॥

---

२. इस गाथा मे प्रतिक्रमण करने के चार कारणों का वर्णन किया है—

(१) जैनागामों मे स्थूल हिंसा आदि जिन पापकर्मों का श्रावक के लिये प्रतिषेध किया गया है उन कर्मों के किये जाने पर प्रतिक्रमण किया जाता है। (२) देवदर्शन, देव पूजन, सामायिक आदि जिन कर्त्तव्यों के करने का श्रावक के लिये विधान किया गया है उनके न किये जाने पर प्रतिक्रमण किया जाता है। (३) आगम से ही जाने जा सकें ऐसे निगोदादि सूक्ष्म पदार्थों के विषय में अश्रद्धा करना तथा जैनधर्म प्रतिपादित तत्त्वों की सत्यता के विषय में संदेह लाने के कारण अश्रद्धा उत्पन्न होने पर प्रतिक्रमण किया जाता है। (४) तथा असत्प्ररूपण—जैन शास्त्रो में प्रतिपादन तत्त्वज्ञान के विरुद्ध विचार प्रतिपादन करने पर प्रतिक्रमण किया जाता है।

३. यहाँ पर यदि कोई यह प्रश्न करे कि जिसने श्रावक के बारह व्रत ग्रहण किये हो, उसे तो प्रतिक्रमण करना योग्य है परन्तु जिसने व्रत ग्रहण नही किये उसे अतिचार असम्भव है इसलिये अविरतियों को प्रतिक्रमण करने की जरूरत नही है।

इसका उत्तर देते है कि—दोनो को प्रतिक्रमण करना योग्य है, क्योंकि मात्र अतिचारों के लिये ही प्रतिक्रमण है ऐसा नही। परन्तु उपर्युक्त टिप्पणी न. २ मे जिन चारों कारणों से प्रतिक्रमण करना बतलाया है इसमे मिथ्यादृष्टि, अविरति सम्यग्दृष्टि, देशविरति तथा सर्वविरति सब आ जाते हैं। अतः चाहे अविरति हो चाहे विरति हो सबके लिये प्रतिक्रमण करना आवश्यक है।

(सब जीवो से क्षमत-क्षामणा करते हैं)

खामेमि सव्वजीवे, सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेर मज्झ न केणई ॥४६॥

शब्दार्थ

खामेमि—क्षमा करता हू क्षमाता हू	मित्ती—मैत्री
	मे—मेरी
सव्वजीवे—सब जीवो को	सव्वभूएसु—सब प्राणियो के साथ
सव्वे—सब	वेर—वैर, शत्रुता
जीवा—जीव, प्राणी	मज्झ—मेरा, मेरी
खमतु—क्षमा करो, क्षमो	न—नही
मे—मुझे, मुझको	केणई—किसी के साथ

भावार्थ—यदि किसी ने मेरा कोई अपराध किया हो तो मैं उसको क्षमाता (उसे क्षमा करता) हू वैसे ही यदि मैंने भी किसी का कुछ अपराध किया हो तो वह मुझे क्षमा करे। मेरी सब जीवो के साथ मित्रता है, किसी के साथ शत्रुता नही है ॥४९॥

(प्रतिक्रमण की समाप्ति पर अंतिम मंगल)

एवमहं आलोइय, निंदिय गरहिअ दुगछिउं सम्म ।
तिविहेण पडिक्कंतो, वंदामि जिणे चउव्वीसं ॥५०॥

शब्दार्थ

एवं—इस प्रकार
अहं—मैं
आलोइअ—आलोचना करके
निंदिय—निन्दा करके
गरहिअ—गर्हा करके
दुगंछिउं—दुगंछा करके, घृणा करके, जुगुप्सा करके
सम्मं—अच्छी तरह
तिविहेण—तीन प्रकार से, मन, वचन और काया से
पडिक्कतो—निवृत्त होता हुआ, प्रतिक्रमण करता हुआ
वंदामि—वन्दना करता हूं
जिणे—जिनेश्वरों को
चउव्वीसं—चौबीस

भावार्थ—इस तरह मैंने अच्छी तरह पापों (अतिचारों) की आलोचना, निन्दा, गर्हा और जुगुप्सा की है; तथा मन, वचन, काया से प्रतिक्रमण करके अब मैं अन्त मे फिर से चौबीस तीर्थंकरों को वन्दना करता हूं ॥५०॥

३५—आयरिअउवज्झाए सूत्र

आयरिअउवज्झाए, सीसे साहम्मिए कुलगणे अ ।
जे मे केई कसाया, सव्वे तिविहेण खामेमि ॥१॥
सव्वस्स समणसंघस्स, भगवओ अँजलिं करिअ सीसे ।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयंपि ॥२॥
सव्वस्स जीवरासिस्स भावओ धम्मनिहिअनिअचित्तो ।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयंपि ॥३॥

शब्दार्थ

आयरिअ—आचार्य पर
उवज्झाए—उपाध्याय पर
सीसे—शिष्य पर
साहम्मिए—साधर्मिक पर, समान धर्म वाले पर
कुल—कुल

गणे—गण
अ—और
जे—जो
मे—मैंने
केइ—कोई भी, कुछ
कसाया—कषाय किये हो
सव्वे—उन सबकी
तिविहेण—तीन प्रकार से, मन, वचन और काया से
खामेमि—क्षमा मागता हू
सव्वस्स—सब
समणसंघस्स—मुनि समुदाय से
भगवओ—पूज्य
अजलि करिअ—अजली करके,हाथ जोडकर
सीसे—सिर पर
सव्व—सब
खमावइत्ता—क्षमा चाहता हू
खमामि—क्षमा करता हू
सव्वस्स—सब
अहयपि—मैं भी
सव्वस्स—उन सब
जीवरासिस्स—जीव राशि से
भावओ—भाव पूर्वक
धम्म निहिय निअ चित्तो—धर्म मे निज चित्त को स्थापन किये हुए
सव्व खमावइत्ता इत्यादि—अर्थ पूर्ववत्

भावार्थ—आचार्य, उपाध्याय, शिष्य सार्धमिक (समान धर्म वाला) कुल[1] और गण[2], उनके ऊपर मैंने जो कुछ कषाय किये हो उन सबकी मन, वचन और काया से क्षमा मागता हू ।१।

हाथ जोड और मस्तक पर रखकर सब पूज्य मुनिराजा से मैं अपने अपराध की क्षमा चाहता हू और मैं भी उनके प्रति क्षमा करता हू ।२।

धर्म मे चित्त को स्थिर करके सम्पूर्ण जीवो से मैं अपने अपराध की क्षमा चाहता हू और स्वय भी उनके अपराध को हृदय से क्षमा करता हू ।३।

---

१ एक आचार्य की आज्ञा मे रहने वाला शिष्य समुदाय गच्छ कहलाता है। ऐसे अनेक गच्छो का समुदाय कुल कहलाता है।

२ अनेक कुलो का समुदाय गण कहलाता है।

३६—सकलतीर्थ नमस्कार

सद्भक्त्या देवलोके रविशशिभवने व्यन्तराणां निकाये ।
नक्षत्राणां निवासे ग्रहगणपटले तारकाणां विमाने ॥
पाताले पन्नगेन्द्रे स्फुटमणिकिरणैर्ध्वस्तसान्द्राऩ्धकारे ।
श्रीमत्तीर्थंकराणां प्रतिदिवसमहं तत्र चैत्यानि वंदे ॥१॥

शब्दार्थ

सद्भक्त्या—उत्कृष्ट भक्ति से
देवलोके—देवलोको मे
रविशशिभवने—सूर्य तथा चन्द्रमा के भवनो में
व्यन्तराणां—व्यंतर देवो के
निकाये—निकायों में
नक्षत्राणां—नक्षत्रो के
निवासे—निवासो मे, विमानो मे
ग्रहगणपटले—ग्रहो के विमानों मे
तारकाणां—तारो के
विमाने—विमानो में
पाताले—पाताल में
पन्नगेन्द्रे—नागकुमार आदि भवनपतियो के भवनो मे
स्फुटमणिकिरणै—प्रकट मणियो की किरणों द्वारा
ध्वंस्त सान्द्राधकारे—गाढ अधकार नाश हुआ है जिसमें
श्रीमान्—अष्ट प्रातिहार्य रूप बाह्य लक्ष्मी तथा अनन्त चतुष्टय रूप आभ्यंतर लक्ष्मी सहित
तीर्थंकराणां—तीर्थकरो की
प्रति दिवसं—प्रतिदिन
अहं—मै
तत्र—वहाँ
चैत्यानिवन्दे—शाश्वत जिन प्रतिमाओ को वन्दन करता हू

भावार्थ—देवलोको में, सूर्य तथा चन्द्रमा के भवनो में, व्यंतर देवो के निकायो मे, नक्षत्रो के निवास स्थानों (विमानों) में, ग्रहो के विमानो मे, तारों के विमानो मे, पाताल-अधोलोक मे, नागकुमार आदि भवनपतियो के भवनों मे, एव प्रकट मणियो की किरणों द्वारा नाश हुआ है गाढ अंधकार जिसमे ऐसे स्थानो में श्रीमान् (लक्ष्मी वाले-आठ प्राति-

हार्य रूप बाह्य लक्ष्मी तथा अनन्त चतुष्टय रूप आभ्यन्तर लक्ष्मी युक्त) तीर्थंकर देवों की वहाँ विद्यमान शाश्वत जिन प्रतिमाओं को उत्कृष्ट भक्ति से मैं वन्दन करता हूं ॥१॥

वैताढ्ये मेरुशृंगे रुचकगिरिवरे कुण्डले हस्तिदंते ।
वक्खारे कूटनंदीश्वर कनकगिरौ नैषधे नीलवंते ॥
चैत्रे शैले विचित्रे यमकगिरिवरे चक्रवाले हिमाद्रौ ।
श्रीमत्तीर्थंकराणां प्रतिदिवसमहं तत्र चैत्यानि वन्दे ॥२॥

शब्दार्थ

वैताढ्ये—वैताढ्य पर्वत मे
मेरुशृंगे—मेरु पर्वत की चोटी पर
रुचकगिरिवरे—रुचक द्वीप के पर्वतों मे
कुंडले—कुंडल द्वीप मे
हस्तिदंते—हस्तिदन्त द्वीप मे
वक्खारे—वक्षस्कार पर्वत पर
कूटनंदीश्वरे—कूट गिरि तथा नन्दीश्वर द्वीप मे
कनकगिरौ—कनकगिरि पर
नैषधे—निषध पर्वत पर
नीलवन्ते—नीलवन्त पर्वत पर
चैत्रे—चैत्र पर्वत पर
विचित्रे—विचित्र पर्वत पर
यमकगिरिवरे—यमक पर्वत पर
चक्रवाले—चक्रवाल पर्वत पर
हिमाद्रौ—हिमाद्रि आदि पर
तत्र—वहाँ रही हुई
श्रीमान् तीर्थंकराणां—बाह्य तथा आभ्यंतर लक्ष्मी युक्त तीर्थंकरों की
चैत्यानि—शाश्वत प्रतिमाओं को
अहं वंदे—मैं वन्दन करता हूं
प्रतिदिवस—प्रतिदिन

भावार्थ—वैताढ्य पर्वत पर, मेरु पर्वत की चोटी पर, रुचक द्वीप के पर्वतों पर कुंडल द्वीप में, हस्तिदन्त द्वीप मे, वक्षस्कार पर्वतों पर, कूटगिरि पर, नन्दीश्वर द्वीप मे, कनकगिरि पर, निषध पर्वत पर, नीलवन्त पर्वत पर, चैत्र पर्वत पर, विचित्र पर्वत पर, यमक पर्वत पर

चक्रवाल पर्वत पर, हिमाद्रि आदि पर्वतों पर श्रीमान् (आठ प्रातिहार्य तथा अनन्त चतुष्टय रूप लक्ष्मी वाले) तीर्थंकर देवो की वहाँ विद्यमान शाश्वत जिन प्रतिमाओ को उत्कृष्ट भक्ति से मैं वन्दन करता हू ।।२।।

श्री शैले विंध्यशृंगे विमलगिरिवरे ह्यर्बुदे पावके वा ।
सम्मेते तारके वा कुलगिरिशिखरेऽष्टापदे स्वर्णशैले ।।
सह्याद्रौ वैजयन्ते विपुलगिरिवरे गुर्जरे रोहणाद्रौ ।।
श्रीमत्तीर्थंकराणां प्रतिदिवसमहं तत्र चैत्यानि वन्दे ।। ३ ।।

शब्दार्थ

श्री शैले—श्री पर्वत पर
विंध्यशृंगे—विंध्याचल पर्वत पर
विमल गिरिवरे—विमल गिरि पर
हि—निश्चय से
अबुर्दे—आबू पर्वत पर
पावके—पावापुरी में, पावागढ पर
वा—अथवा
सम्मेते—सम्मेतशिखर पर
तारके—तारंगाजी पर
वा—अथवा
दुलगिरिशिखरे—कुलगिरि शिखर पर
अष्टापदे—अष्टापद पर्वत पर
स्वर्णशैले—स्वर्णगिरि पर
सह्याद्रौ—सह्याद्री पर्वत पर
वैजयन्ते—वैजयन्त में
विपुलगिरिवरे—विपुलगिरि पर
गुर्जरे—गुजरात देश में
रोहणाद्रौ—रोहणाद्री पर्वत पर
श्रीमत्तीर्थंकराणां—श्रीमान् तीर्थ-कर देवो की
चैत्यानि—प्रतिमाओं को
प्रतिदिवसं—प्रतिदिन
अह—मैं
वन्दे—वन्दना करता हूं

भावार्थ—श्री पर्वत पर, विंध्याचल पर्वत पर, विमल गिरि (सिद्धाचल पर्वत) पर, आबू पर्वत पर, पावागढ पर अथवा पावापुरी में, सम्मेत शिखर पर्वत पर, तारंगा पर्वत पर, कुलगिरि के शिखर पर, अष्टापद पर्वत पर, स्वर्णगिरि पर, सह्याद्रि पर्वत पर, वैजयन्त पर्वत पर, विपुल पर्वत पर, गुजरात देश में, रोहणाद्रि पर्वत पर, बाह्य तथा आभ्यन्तर

लक्ष्मी वाले तीर्थंकर देवों की वहाँ विद्यमान प्रतिमाओं (मूर्तियों) को भक्ति भाव से मैं वन्दन करता हूं ॥३॥

आघाटे मेदपाटे क्षितितटमुकुटे चित्रकूटे त्रिकूटे।
लाटे नाटे च घाटे विटपिघनतटे देवकूटे विराटे ॥
कर्णाटे हेमकूटे विकटतरकटे चक्रकूटे च भोटे।
श्रीमत्तीर्थंकराणां प्रतिदिवसमहं तत्र चैत्यानि वंदे ॥४॥

शब्दार्थ

आघाटे—आघाट देश में	कर्णाटे—कर्णाटक देश में
मेदपाटे—मेवाड़ देश में	हेमकूटे—हेमकूट पर्वत पर
क्षितितटमुकुटे—पृथ्वी तल पर मुकुट समान	विकटतरकटे—विकट स्थानों में
चित्रकूटे—चित्तौड़ में	चक्रकूटे—चक्रकूट पर्वत पर
त्रिकूटे—त्रिकूट पर	च—और
च—तथा	भोटे—भोट देश में
लाटे नाटे च घाटे—लाट देश में नाट घाट आदि प्रदेशों में	श्रीमत्तीर्थंकराणां—श्रीमान् तीर्थंकरों की
विटपिघनतटे-गहन वृक्षों के बीच में	तत्र—वहाँ विद्यमान
देवकूटे—देवकूट पर्वत पर	प्रतिदिवस—प्रतिदिन
विराटे—विराट देश में	चैत्यानि—मूर्तियों को
	अहं वंदे—मैं वन्दना करता हूं

भावार्थ—आघाट देश में, मेवाड़ देश में, पृथ्वीतल पर मुकुट समान चित्तौड़गढ़ में, त्रिकूट पर, तथा लाटदेश में नाट, घाट आदि प्रदेशों में, गहन वृक्षों के बीच में देवकूट पर्वत पर, विराट देश में, कर्णाटक देश में हेमकूट नामक पर्वत पर, विकट स्थानों में, चक्रकूट पर्वत पर और भोट

नामक देश मे श्रीमान् तीर्थंकर देवो की वहाँ विद्यमान प्रतिमाओं को मैं भक्ति भाव से वन्दन करता हूं ॥४॥

श्रीमाले मालवे वा, मलयिनि निषधे मेखले पिच्छले वा।
नेपाले नाहले वा कुवलयतिलके सिंहले केरले वा।
डाहाले कोशले वा विगलितसलिले जंगले वाढमाले।
श्रीमत्तीर्थंकराणां प्रतिदिवसमहं तत्र चैत्यानि वंदे॥५॥

शब्दार्थ

श्रीमाले—श्रीमाल देश मे
मालवे—मालवा देश मे
वा—अथवा
मलयिनि—मलयगिरि पर
निषधे—निषध गिरि पर
मेखले—पर्वतों की मेखलाओं मे
पिच्छले—कीचड वाले प्रदेश में
वा—अथवा
नेपाले—नेपाल देश मे
नाहले—नाहल देश मे
वा—अथवा
कुवलयतिलके—पृथ्वी के वलय मे तिलक समान ऐसे
सिंहले—सिंहल द्वीप मे
केरले—केरल देश मे
वा—अथवा
डाहाले—डाहाल देश में
कोशले—कौशल देश में
वा—अथवा
विगलितसलिले—निर्जल
जंगले—जगल देश (मारवाड़)
वाढमाले—वाढमाल देश में
श्रीमत्तीर्थंकराणां—श्रीमान् तीर्थकर देवो को
तत्र—वहाँ विद्यमान
चैत्यानि—मूर्तियों को
प्रतिदिवसं अहं वन्दे—मैं प्रतिदिन वन्दन करता हूं।

भावार्थ—श्रीमाल देश मे, मालवा देश में, अथवा मलयगिरि पर, निषधगिरि पर, पर्वतों की मेखलाओ मे, कीचड़ वाले प्रदेशों में, नेपाल देश मे, नाहल देश में अथवा पृथ्वी के वलय में तिलक समान सिंहल द्वीप में, केरल

देश मे ग्रथवा डाहल देश मे, कोशल देश मे, निजल जगल जैसे मारवाड देश मे, वाढमाल देश मे, श्रीमान् तीर्थंकर देवो की वहाँ विद्यमान प्रतिमाग्रो को मैं वन्दन करता हू ॥५॥

ग्र गे वगे कलिगे सुगतजनपदे सत्प्रयागे तिलगे ।
गौडे चौडे मुरंडे वरतर द्रविडे उद्रियाणे च पौड्रे ॥
ग्राद्रे माद्रे पुलिद्रे द्रविडकवलये, कान्यकुब्जे सौराष्ट्रे ।
श्रीमत्तीर्थंकराणा प्रतिदिवसमह तत्र चैत्यानि वन्दे ॥६॥

शब्दार्थ

अगे—अग देश मे
बगे—वग देश मे, वगाल मे
कलिगे—कलिग देश मे
सुगतजनपदे—बौद्ध जनपदो मे
सत्प्रयागे—श्रेष्ठ प्रयाग तीर्थ मे
तिलगे—तिलग देश मे,
गौडे चौडे मुरडे वरतर द्रविडे—गौड, चौड, मुरड देशो म अत्यन्त श्रेष्ठ द्राविड देश मे
उद्रियाणे च—उद्रियान तथा
पौड्रे—पौंड्र देश मे
आद्रे—अनार्य आद्र देश मे
माद्रे—माद्रि देश मे
पुलिद्रे—पुलिद्र देश मे (भीलो के) देश मे
द्रविडकवलये—द्रविड प्रदेश के पृथ्वी चक्र मे
कान्यकुब्जे—कान्यकुब्ज (कन्नौज) देश मे
सौराष्ट्रे—सौराष्ट्र देश मे
श्रीमत्तीर्थंकराणा—श्रीमान् तीर्थंकरो की
तत्र—वहाँ विद्यमान
चैत्यानि—प्रतिमाम्रो का
प्रतिदिवस—प्रतिदिन
अह—मैं
वन्दे—वन्दन करता हू

भावार्थ—अग देश म, वग (वगाल देश) मे, कलिग देश मे, बौद्ध जनपदों मे, श्रेष्ठ प्रयाग तीर्थ मे, तिलग देश म, गौड, चौड, मुरड देशो मे

अत्यन्त श्रेष्ठ द्राविड़ देश मे, उड़ियाणा तथा पांड्र देश मे, अनार्य आर्द्र देश मे, माद्रि देश मे, पुलिंद्र (भीलों के) देश मे, द्रविड देश के पूर्वी चक्र मे, कान्यकुब्ज देश मे तथा सौराष्ट्र देश मे, श्रीमान् तीर्थंकर देवों की वहाँ विद्यमान प्रतिमाओं को मैं प्रतिदिन वन्दन करता हूं ॥६॥

चंपायां चंद्रमुख्यां गजपुरमथुरापत्तने चोज्जयिन्यां ।
कोशांब्यां कोशलायां कनकपुरवरे देवगिर्यां च काश्याम् ॥
नासिक्ये राजगेहे दशपुरनगरे, भद्दिले ताम्रलिप्त्यां ।
श्रीमत्तीर्थंकराणां प्रतिदिवसमहं तत्र चैत्यानि वन्दे ॥७॥

शब्दार्थ

चम्पायां—चम्पा नगरी मे
चन्द्रमुख्यां—चन्द्रपुरी मे
गजपुर—गजपुर (हस्तिनापुर) में
मथुरा—मथुरा मे
पत्तने—पाटण मे
च—और
उज्जयिन्यां—उज्जयनी मे
कौशाम्ब्यां—कौशांबी मे
कौशालायां—कौशलपुरी (अयोध्या) मे
कनकपुरवरे—श्रेष्ठ कनकपुरी में
देवगिर्यां—देवगिरी मे
च—तथा
काश्याम्—काशी में
नासिक्ये—नासिक में
राजगेहे—राजगृह में
दशपुरनगरे—मंदसोर में
भद्दिले—भद्दिलपुर मे
ताम्रलिप्त्यां—ताम्रलिप्त में
श्रीमत्तीर्थंकराणां—श्रीमान् तीर्थंकर देवों की
तत्र—वहाँ विद्यमान
चैत्यानि—प्रतिमाओं को
प्रतिदिवसं—प्रतिदिन
अहं वन्दे—मैं वन्दन करता हूं

भावार्थ—चम्पापुरी मे, चन्द्रपुरी मे, हस्तिनापुर में, मथुरा में और पाटण में, उज्जयनी मे, कौशाम्बी मे, अयोध्या मे, श्रेष्ठ कनकपुरी में,

देवगिरि मे तथा काशी मे, नासिक में, राजगृह मे, मदसौर मे, भद्दिलपुर मे, ताम्रलिप्ति मे, श्रीमान् तीर्थंकर देवो की वहाँ विद्यमान प्रतिमाओ को मैं प्रतिदिन वन्दन करता हू ॥७॥

स्वर्गे मर्त्येऽन्तरिक्षे गिरिशिखर-ह्रदे स्वर्णदीनीरतीरे ।
शैलाग्रे नागलोके जलनिधिपुलिने, भूरुहाणां निकुंजे ॥
ग्राम्येऽरण्ये वने वा स्थलजलविषमे दुर्गमध्ये त्रिसंध्य ।
श्रीमत्तीर्थंकराणा प्रतिदिवसमहं तत्र चैत्यानि वदे ॥८॥

शब्दार्थ

स्वर्ग—स्वर्ग लोक मे (ऊर्ध्व लोक में)
मर्त्ये—मृत्यु लोक (मध्य लोक) मे
अन्तरिक्षे—अन्तरिक्ष (ज्योतिष लोक) मे
गिरिशिखरह्रदे—पर्वत शिखरो के ह्रदों में
स्वर्णदीनीरतीरे—जलाशयो के किनारो पर
शैलाग्रे—पर्वतो के अग्रभाग मे
नागलोके—पाताल मे, अधोलोक मे
जलनिधिपुलिने—समुद्र तटो पर
भूरुहाणां निकुंजे—वृक्षो की झाडियो मे
ग्राम्ये—गाँव नगरो मे
अरण्ये—अरण्यो मे
वने—वन मे
वा—अथवा
स्थल जल विषमे—स्थल मे, जल मे, विषम स्थानो मे
दुर्गमध्ये—किलो (दुर्गों) मे
त्रिसंध्य—तीन काल मे
श्रीमत्तीर्थंकराणा—श्रीमान तीर्थंकर देवो की
तत्र—वहाँ विद्यमान
चैत्यानि—प्रतिमाओ को
प्रतिदिवस—प्रतिदिन
अहं वन्दे—मैं वन्दन करता हू

भावार्थ—उर्ध्व लोक में, मध्यलोक (मर्त्य लोक मे) तथा अन्तरीक्ष ज्योतिष लोक में, पर्वत शिखरो के द्रहो में, जलाशयो आदि के किनारो पर, पर्वतों के अग्रभागो पर, अधोलोक में, समुद्र तटों पर, वृक्षों की झाड़ियों मे, ग्राम-नगरो मे, जंगलो मे, वनो मे अथवा स्थल मे, जल में, विषम स्थलो मे, दुर्गो (किलों) मे, श्रीमत्तीर्थंकरों की वहाँ विद्यमान प्रतिमाओं को मैं प्रतिदिन तीन संध्या (प्रात:, मध्याह्न तथा शाम) में वन्दन करता हू ॥८॥

श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रुचकनगवरे शालमलौ जंबुवृक्षे ।
चौज्जन्ये चैत्यनंदे रतिकररुचके कौंडले मानुषांके ॥
इक्षूकारे जिनाद्रौ च दधिमुखगिरौ व्यन्तरे स्वर्गलोके ।
ज्योतिर्लोके भवन्ति त्रिभुवनवलये यानि चैत्यालयानि ।
श्रीमत्तीर्थंकराणां प्रतिदिवसमहं तत्र चैत्यानि वंदे ॥९॥

शब्दार्थ

श्रीमन्मेरौ—मेरु पर्वत पर
कुलाद्रौ—कुलगिरि पर
रुचकनगवरे—रुचक पर्वत पर
शालमलौ—शालमली वृक्ष पर
जंबुवृक्षे—जंबु वृक्ष पर
च—और
उज्जन्ये—उजयंत (गिरनार) पर्वत पर
चैत्यनन्दे—चैत्यनन्द पर
रतिकररुचके—रतिकर पर्वत पर
कौंडले—कुंडल द्वीप मे
मानुषांके—मानुषोत्तर पर्वत पर
इक्षकारे—इक्षूकार पर्वत पर
जिनाद्रौ—जिनाद्री पर्वत पर
च—तथा
दधिमुखगिरौ—दधिमुख पर
व्यंतरे, स्वर्गलोके, ज्योतिर्लोके व्यंतरो की निकाय मे, देवलोक में, ज्योतिष लोक मे
भवन्ति—होते है
त्रिभुवन वलये—तीन भुवन मे
यानि चैत्यालयानि—जो जिन मंदिर
श्रीमत्तीर्थंकराणां—श्रीमान् तीर्थंकरो को

तत्र—वहाँ विद्यमान
चैत्यानि—प्रतिमाएँ हैं
प्रतिदिवस—प्रतिदिन
अहं वन्दे—मैं वन्दन करता हूँ।

भावार्थ—मेरु पर्वत पर कुलगिरि पर, रुचक पर्वत पर, शाल्मली वृक्ष पर, जम्बू वृक्ष पर और गिरनार पर्वत पर, चैत्यनन्द पर, रतिकर पर्वत पर, कुण्डल द्वीप में, मानुषोत्तर पर्वत पर, इक्षुकार पर्वत पर, जिनांकों पर, दधिमुख पर्वत पर, व्यन्तरों की निकाय में, देवलोक में तथा ज्योतिषलोक में अर्थात् तीन लोक में जहाँ कहीं भी जिनेश्वर प्रभु के मंदिर हैं उनमें विराजमान श्रीमान् तीर्थंकर देवों की प्रतिमाओं को मैं वन्दन करता हूँ ॥९॥

इत्थं श्रीजैनचैत्यस्तवनमनुदिनं ये पठन्ति प्रवीणाः ।
प्रोद्यत्कल्याणहेतुं, कलिमलहरणं, भक्तिभाजस्त्रिसंध्यम्
तेषां श्रीतीर्थयात्राफलमतुलमलं जायते मानवानाम् ।
कार्याणां सिद्धिरुच्चैः प्रमुदितमनसा चित्तमानन्दकारि
॥१०॥

शब्दार्थ

इत्थं—इस प्रकार
श्री जैन चैत्य स्तवन—श्री जैन मन्दिर स्तवन
अनुदिन—प्रतिदिन
ये—जो
पठन्ति—पढ़ते हैं
प्रवीणा—चतुर लोग
प्रोद्यत्कल्याण—श्रेष्ठ कल्याण के
हेतु—निमित्त
कलिमलहरण—पाप रूपी मैल को हरने वाला
भक्तिभाज—भक्ति का सेवन करने वाला
त्रिसंध्यं—त्रिकाल, तीन समय
तेषां—उनको
श्री तीर्थ यात्रा फल—श्री तीर्थ यात्रा का फल
अतुल—अपूर्व

अलं—अच्छी तरह
जायते—होता है
मानवानाम्—मनुष्यों के
कार्याणां—सब कार्य
सिद्धि—सिद्ध, सफलीभूत

उच्चैः—अच्छी तरह
प्रमुदित—हर्षित
मनसां—मन वाले
चित्तआनंदकारी—चित्त में आनंद करने वाला है

भावार्थ—यह श्री चैत्यवन्दन स्तवन जो चतुर लोग इस प्रकार तीन सध्या (प्रातः, दोपहर तथा शाम को) प्रतिदिन पढ़ते हैं उनके लिये यह सदा कल्याणकारी, पापरूपी मैल को हरने वाला, भक्ति में तल्लीन करने वाला, अच्छी तरह अपूर्व तीर्थयात्रा का फल देने वाला होता है। ऐसे मनुष्यों के सर्व कार्य अच्छी तरह सिद्ध होते हैं जिससे उनका मन सदा प्रसन्न तथा चित्त प्रफुल्लित रहता है ॥१०॥

३७—परसमयतिमिरतरणि स्तुति

(श्री महावीर स्वामी की स्तुति)

परसमयतिमिरतरणिं, भवसागरवारितरणवर तरणिम् । रागपरागसमीरं, वंदे देवं महावीरम् ॥१॥

शब्दार्थ

पर—अन्य
समय—सिद्धान्त रूप
तिमिर—अन्धकार को दूर करने में
तरणिं—सूर्य समान
भव—संसार रूप
सागर—समुद्र के
वारि—जल को
तरण—तैरने में

वर—श्रेष्ठ
तरणिम्—नाव के समान
राग—राग रूप
पराग—रज को उड़ाने के लिये
समीरं—वायु के समान
वन्दे—वन्दन करता हूं
देवं—देव को
महावीरम्—महावीर को

भावार्थ—पर सिद्धान्त रूप अंधकार को नाश करने मे सूर्य समान ससार रूप समुद्र के जल को तैरने के लिए श्रेष्ठ नाव के समान, राग रूप रज को उडाने के लिये वायु के समान (ऐसे) श्री महावीर देव को मैं वन्दन करता हू ॥१॥

(सकल जिनेश्वरो की स्तुति)

निरुद्धससारविहारकारि–दुरतभावारिगणा निकामम्
निरतर केवलिसत्तमा वो, भवावहं मोहभर हरन्तु ॥२॥

शब्दार्थ

निरुद्ध—रोका है	निकाम—अत्यन्त
ससार—ससार	निरतर– सदा
विहार—भ्रमण को	केवलिसत्तमा—तीर्थंकर
कारि—कराने वाले	वो—तुम्हारा
दुरत—बहुत कठिनता से अन्त हो	भवावह—ससार को बढाने वाले
भावारि—भावरूप शत्रुओं का	मोहभर—मोह के भार को
गणा—समुदाय	हरतु—हरण करो

भावार्थ—ससार भ्रमण को कराने वाले भावशत्रुओं के समुदाय का जिन्होंने अपने महान् पुरुषार्थ द्वारा अन्त किया है ऐसे तीर्थंकर देव तुम्हारे ससार को बढाने वाले मोह के भार का सदा अन्त करें ॥२॥

(जिनागम की स्तुति)

सदेहकारि कुनयागमरूढगूढ-
समोहपंकहरणामलवारिपूरम् ।
ससारसागरसमुत्तरणोरुनाव,
वीरागम परम सिद्धिकर नमामि ॥३॥

शब्दार्थ

सन्देहकारि—संदेह पैदा करने वाले	पूरं—पूर
कुनयागम–मिथ्या ज्ञान वाले आगम में	संसार सागर—संसार रूप समुद्र को
रूढ—आरूढ	समुत्तरण—पार उतारने के लिये
गूढ—गुप्त	उरुनावं—श्रेष्ठ नाव के समान
संमोहपंक – मोह रूप कीचड़ को	वीरागमं—महावीर प्रभु का आगम
हरणं—हरण करने के लिये	परम—उत्कृष्ट
अमलं—निर्मल	सिद्धिकरं—सिद्धि करने वाले को
वारि—जल का	नमामि—मैं नमस्कार करता हूं

भावार्थ—संदेह को उत्पन्न करने वाले, मिथ्या ज्ञान को उपार्जन कराने वाले कुआगमों पर आरूढ हुए गुप्त मोहरूप कीचड़ को हरने के लिए निर्मल जल के पूर समान; संसार रूपी समुद्र से पार उतारने के लिये श्रेष्ठ नाव समान, परम सिद्धि के करने वाले श्री महावीर प्रभु के आगमों को मैं नमस्कार करता हूं ॥३॥

(श्रुतदेवी की स्तुति)

परिमलभरलोभालीढलोलालिमाला—
वरकमलनिवासे हारनिहारहासे ।
अविरलभवकारागारविच्छित्तिकारं,
कुरु कमलकरे मे मंगलं देवि सारम् ॥४॥

शब्दार्थ

परिमल भर—पराग से भरी हुई सुगंधी से	की श्रेणियों से शोभायमान
लोभालीढ—लोभ मे मग्न बने हुए	वर कमल निवासे–श्रेष्ठ कमल में
लोलालिमाला—चपल भंवरों	निवास करने वाली

हारनिहारहासे—हार तथा बरफ के सदृश सफेद तथा हास्ययुक्त	विच्छित्ति कार—छुटकारा दिलाने वाली
कमल करे—हाथ मे कमल को धारण करने वाली	देवि—हे श्रुत देवी !
अविरल—अन्तर रहित	मे—मेरा
भव कारागार—जन्म-मरण रूप ससार के जेल से	सार मगल—सर्वश्रेष्ठ मगल
	कुरु—करो

भावार्थ—(१) पराग से भरी हुई सुगधी से लोभ मे मग्न बने हुए चपल भवरों की श्रेणियो मे (शोभायमान) श्रेष्ठ कमल मे निवास करने वाली, (२) हार तथा बफ के सदृश सफेद दिव्य रूप वाली, (३) हास्य युक्त हाथ मे कमल को धारण करने वाली, (४) अन्तर रहित (अनादि काल से चले आ रहे) जन्म-मरण रूप ससार कारागार से छुटकारा (मोक्ष) दिलाने वाली हे श्रुतदेवी ! सर्वश्रेष्ठ मगल को कर अर्थात ससार से पार होने का वरदान दे ।।४।।

३८—ससारदावानल स्तुति

ससार[1] दावानल दाह नीरं,
समोहधूलीहरणेसमीर ।
माया रसादारणसारसीर,
नमामि वीरं गिरिसारधीर ।।१।।
भावावनामसुरदानवमानवेन-
चूला विलोलकमलावलिमालितानि ।

---

१ यह स्तुति समसस्कृत प्राकृत भाषा मे (वि स ५८५) श्री हरिभद्रसूरि ने रचि है ।

संपूरिताभिनतलोकसमीहितानि
कामं नमामि जिनराजपदानि तानि ॥२॥

बोधागाधं सुपद पदवीनीरपूराभिरामं,
जीवाहिंसाऽविरल लहरीसंगमागाहदेहं ।
चूलावेलं गुरुगममणीसंकुलंदूरपारं,
सारं वीरागमजलनिधिं सादरं साधु सेवे ॥३॥

आमूलालोलधूली बहुलपरिमलालीढलोलालिमाला-
झंकारारावसारामलदलकमलागारभूमीनिवासे !!
छाया संभारसारे ! वरकमल-करे ! तारहाराभिरामे ।
वाणीसंदोहदेहे ! भवविरहवरं देहि मे देवि !
सारं ॥४॥

गाथा ४, पद १६, संपदा १६, सर्ववर्ण २५२

शब्दार्थ

संसार दावानल दाह नीरं—संसार रूपी दावानल के ताप को शात करने मे जल के समान
संमोह धूली हरणे समीरं—मोह-रूपी धन को दूर करने में पवन के समान
माया रसा दारण सार सीरं—माया रूपी पृथ्वी को खोदने में पैने हल के समान
वीरं—श्री महावीर प्रभु को
गिरि सार धीरं—मेरु पर्वत के समान धीरज वाले स्थिर
भावावनाम—भावपूर्वक नमस्कार करने वाले
सुर दानव मानवेन—देव दानवों तथा मनुष्यों के स्वामियों के

चूला विलोल कमलावलि मालितानि—मुकुटो मे रहे हुए देदीप्यमान कमलो की पक्तियो से सुशोभित

सपूरिताभिनत लोक समीहितानि—जिनके प्रभाव से नमन करने वाले लोगो के मनोवाछित अच्छी तरह पूरा हुए हैं

काम—बहुत, अत्यन्त

जिनराज पदानि—श्री जिनेश्वर के चरणो को

तानि—उन

बोधागाध—ज्ञान से आगाध गभीर

सुपद पदवी नीर पूराभिराम—सुन्दर पदो की रचना रूप जल प्रवाह से मनोहर

जीवाहिंसाऽविरल लहरी सगमागाहदेह—जीवदया रूप अतररहित तरगो के सगम द्वारा अगाध है शरीर जिनका

चूला वेल—चूलिका रूप तटवाले

गुरु गम मणी सकुल—बडे-बडे आलापक रूपी रत्नो से भरपूर

दूर पार—जिनका सपूर्ण पार पाना अति कठिन है

सार—उत्तम, सर्व श्रेष्ठ

वीरागम जलनिधि—श्री महावीर प्रभु के आगम रूपी समुद्र की

सादर—आदर पूर्वक

साधु—अच्छी तरह

सेवे—मैं उपासना करता हू, मैं सेवा करता हू

आमूलालोल—मूल तक कुछ डोलने से गिरी हुई

धूली बहुल परिमला—रज-पराग से भरी हुई सुगन्धी मे

आलीढ—मग्न बने हुए

लोला अलिमाला—चपल भवरो की श्रेणियो की

झकार आराव—झकार शब्द से

सार—श्रेष्ठ

अमल दल कमल—निर्मल स्वच्छ पत्तो वाले कमल

आगार भूमि निवासे—गृह की भूमि मे निवास करने वाली

छाया सभार सारे—काति पुन्ज से शोभायमान

वर कमल करे—हाथ मे उत्तम कमल को धारण करने वाली

तार हाराभिरामे—देदीप्यमान हार से सुशोभित

वाणी सदोह देहे—बारह अग रूप वाणी ही जिसका शरीर है

भव विरह वर—मोक्ष का वरदान

देवि—हे श्रुतदेवी

देहि मे सार—मुझे श्रेष्ठ दो

भावार्थ [श्री महावीर प्रभु की स्तुति] श्री महावीर स्वामी जो संसार रूपी दावानल के ताप को शांत करने में जल के समान हैं, महामोहनीय कर्म रूपी धूली को उड़ाने में वायु समान है, माया रूपी पृथ्वी को खोदने में तीक्ष्ण हल के समान है और मेरु पर्वत के समान धीर (दृढ स्थिरता वाले) हैं उनको मैं नमस्कार करता हूं ॥१॥

[सकल जिनेश्वरों की स्तुति] भक्ति पूर्वक नमन करने वाले सुरेन्द्रों दानवेन्द्रों और नरेन्द्रों के मुकुटों में विद्यमान देदीप्यमान चित्रकर कमलों की मालाओं द्वारा पूजित तथा शोभायमान एवं भक्त लोगों के मनोवाञ्छित अच्छी तरह पूर्ण करने वाले ऐसे सुन्दर और प्रभावशाली जिनेश्वर देवों के चरणों को मैं अत्यन्त श्रद्धापूर्वक नमन करता हूं ॥२॥

[आगम स्तुति] इस श्लोक के द्वारा समुद्र के साथ समानता दिखाकर आगम की स्तुति की गई है।

श्री महावीर स्वामी के श्रेष्ठ आगम रूपी समुद्र का मैं आदरपूर्वक अच्छी तरह से सेवन करता हूं। जैसे समुद्र मे अगाध जल होता है वैसे इस आगम रूपी समुद्र में अगाध ज्ञान रहा हुआ है, तथा यह आगम समुद्र श्रेष्ठ शब्दों के रचना रूपी जल के समूह द्वारा मनोहर दीख पडता है, लगातार बड़ी-बड़ी तरंगों के उठते रहने से जैसे समुद्र में प्रवेश करना कठिन है वैसे ही यह आगम समुद्र भी जीवदया के सूक्ष्म विचारो से परिपूर्ण होने के कारण इनमें भी प्रवेश करना अति कठिन है, जैसे समुद्र के बड़े-बडे तट होते हैं वैसे ही आगम मे भी बड़ी-बड़ी चूलिकाएँ हैं, जैसे समुद्र मोती, मूँगो आदि से भरपूर है उस प्रकार आगम में भी बड़े-बड़े उत्तम-गम आलावे (सदृश पाठ) हैं, तथा जिस प्रकार समुद्र का पार किनारा बहुत ही दूरवर्ती होता है वैसे ही आगम का भी पार पाना अर्थात् पूर्ण रीति से मर्म समझना (अत्यन्त मुश्किल) है ॥३॥

[श्रुत देवी की स्तुति] हे श्रुतदेवी ! मुझे सर्वोत्तम मोक्ष का वरदान दो अर्थात् मैं संसार से पार उतरूँ ऐसा वरदान दो। इस श्लोक मे श्रुत

देवी के चार विशेषण दिये हैं, वे इस प्रकार हैं—

श्रुतदेवी का निवास कमल पर रहते हुए जिस भवन में है वह कमल जल की तरंगों से भूत पवन चपल-हिलोरें खा रहा है, और उसके मकरन्द की अत्यन्त सुगन्ध पर मस्त हो रहे चपल भवरों के समूह की गुंजारव शब्द से वह कमल शोभायमान हो रहा है तथा उस कमल के पत्ते अत्यन्त स्वच्छ हैं। ऐसे कमल पर उस श्रुतदेवी का भवन है। तथा वह देवी कांति के समूह से सुशोभित है, उसके हाथ में श्रेष्ठ कमल है, देदीप्यमान हार से वह मनोहर दिखलाई दे रही है और उसका शरीर द्वादशांगी के समूह रूप है अर्थात् द्वादशांगी की अधिष्ठात्री है।

३९. यदंघ्रिनमनादेव स्तुति[1]

यदंघ्रिनमनादेव, देहिनः संति सुस्थिताः ।
तस्मै नमोस्तु वीराय, सर्व-विघ्न-विघातिने ॥१॥

सुरपति नत–चरण–युगान्,
नाभेय जिनादि जिनपतीन्नौमि ।
यद्वचन-पालन पराजलांजलिं ददतु दुःखेभ्यः ।२।

वदन्ति वृंदार-गणाग्रतो जिनाः,
सदर्थतो यद्रचयन्ति-सूत्रतः ।
गणाधिपास्तीर्थ–समर्थन–क्षणे,
तदंगिनामस्तु मतं चिनुतये ॥३॥

शक्र-सुरासुरवरैस्सह देवतानि ।
सर्वज्ञ-शासन-सुखाय-समुन्नतानि ॥

श्री वर्द्धमान–जिनदत्त–मत–प्रवृत्तान् ।
भव्यान् जनानवतु नित्यममंगलेभ्य ।।४।।

गाथा ४, पद १६, संपदा १६, सर्ववर्ण १८२

शब्दार्थ

यदंघ्रि—जिनके चरण को
नमनात्—नमस्कार करने से
एव—ही
देहिन—शरीरधारी प्राणी
संति—होते हैं
सुस्थिता—सुखी
तस्मै—उनके लिये, उनको
नमोस्तु—नमस्कार हो
वीराय—श्री महावीर प्रभु को
सर्व—संपूर्ण
विघ्न—विघ्न बाधाएं
विघातिने—नाश करने वाले
सुरपति—इन्द्रों से
नत—नमस्कार पाये हुए
चरण-युगान्—दोनों चरण जिनके
नाभेय—श्री ऋषभदेव
जिनादि—जिनेश्वर आदि
जिनपतीन्—चौबीस तीर्थंकरों को
नौमि—नमस्कार करता हूं
तीर्थ समर्थन—तीर्थ की स्थापना
यद्वचन—जिनका वचन, सिद्धान्त, आज्ञा प्रवचन के
पालन—आराधना में, पालन में
परा—तत्पर
जलांजलि—जलांजली को
ददतु—देवें
दुःखेभ्य—दुःखों के लिये
वदन्ति—कहते हैं
वृंदारु—देवताओं के
गण—समुदाय
अग्रतो—आगे
जिनाः—तीर्थंकर
सदर्थतः—विद्यमान अर्थ से
यत् रचयन्ति सूत्रत—जो सूत्र रूप रचते हैं
गणाधिपा—गणधर देवो ने
क्षणे—समय मे
तत्—वह
अंगिनां—प्राणियों को
अस्तु—हों
मत—आगम

विमुक्तये—विशेष मुक्ति के लिये	जिनेश्वर ने
शक्र—इन्द्र	दत्त—कहा हुआ
सुर—देव	श्रीवर्द्धमान—आचार्य लक्ष्मी से
असुर—भवनपति	वृद्धि पाते हुए
वरं—श्रेष्ठ	जिनदत्त—श्री जिनदत्तसूरि की
सह—साथ	मत—आज्ञा में
देवताभि—देवताओं द्वारा	प्रवृत्तान—प्रवर्तित
सर्वज्ञ—केवलज्ञानियों के, जिन के	भव्यान्—भव्य
शासन—शासन, प्रवचन में	जनान्—जनों का
सुखाय—सुख के लिये	अवतु—रक्षण करो
समुद्यताभि—उद्यमी	नित्य—सदा
श्रीवर्द्धमान जिन—श्री महावीर	अमंगलेभ्य—उपद्रवों से

श्री महावीर प्रभु की स्तुति

भावार्थ—जिनके चरणों को नमस्कार करने से ही प्राणियों के सब विघ्न बाधाएँ नाश हो जाती हैं तथा शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है ऐसे श्री महावीर प्रभु को नमस्कार हो ॥१॥

चौवीस तीर्थंकरों की स्तुति

जिनकी आज्ञा की आराधना (को पालन करने) में तत्पर ऐसे भव्य प्राणियों के दुःखों का नाश होता है उन ऋषभदेव आदि चौवीस तीर्थंकर भगवंतों को मैं नमस्कार करता हूं ॥२॥

जैनागम स्तुति

चतुर्विध संघ की स्थापना के समय जिनेश्वरदेवों ने विद्यमान देवताओं के समुदाय में सामने अर्थ से जो आगम कहे हैं तथा गणधर देवों ने उन आगमों की सूत्र रूप से जो रचना की है, वे आगम प्राणियों को विशेष मुक्ति के लिये हों ॥३॥

शासनदेव की स्तुति

श्री महावीर स्वामी की आज्ञाओं को पालन करने में प्रवृत्त अथवा अन्तरंग लक्ष्मी की वृद्धि पाने वाले आचार्य जिनदत्तसूरि की आज्ञा में

प्रवृत्त और श्री वीतराग सर्वज्ञ शासन के अमृत को पानकर मोक्ष सुख को पाने के लिये उद्यमशील भव्य जनो का अमंगलो (उपद्रवो) से सुरो तथा असुरो मे श्रेष्ठ देवताओ के साथ शक्रेन्द्र सदा रक्षण करो ॥४॥

४० जय तिहुअण स्त्रोत

जय तिहुअण-वर-कप्परुक्ख, जय जिण-धन्नंतरि ।
जय तिहुअण-कल्लाण-कोस, दुरिअ-क्करि-केसरि ॥
तिहुअण-जण-अविलंघिआण, भुवण-त्तय-सामिअ ।
कुणसु सुहाइं जिणेस पास, थंभणयपुर-ट्ठिअ ॥१॥

शब्दार्थ

तिहुअण—तीनो लोकों के लिये
वर—उत्कृष्ट
कप्परुक्ख—कल्पवृक्ष के समान
जिण—जिनेश्वरो मे
धन्नंतरि—धनवंतरि के सदृश्य
तिहुअण-कल्लाण-कोस—तीन लोक के कल्याणो के खजाने
दुरिअ—पाप रूप
करि—हाथियो के लिये
केसरि—सिह के समान
तिहुअणजण—तीनों लोको के प्राणी जिनकी
अविलंघिआण—आज्ञा का उल्लघन नही कर सकते ऐसे
भुवण-त्तय - तीनों लोको के
सामिअ—नाथ
थंभणयपुर-ट्ठिअ—स्तम्भनपुर मे विराजमान
पास—हे पार्श्व
जिणेस—जिनेश्वर
जय, जय, जय—तेरी जय हो और वार-वार जय हो
सुहाइ—मेरे लिये सुखादि
कुणसु—करो

भावार्थ—स्तम्भनपुर मे विराजमान हे पार्श्व जिनेश्वर ! तुम्हारी जय हो और वार-वार जय हो । आप तीनो लोको मे उत्कृष्ट कल्पवृक्ष के समान हो; जैसे वैद्यो मे धनवन्तरि बड़े भारी वैद्य है उसी तरह

तुम भी जिनों—सामान्य केवलियों में उत्कृष्ट जिन हो, तीनों जगत को कल्याण दान के लिये आप एक भरपूर खजाने हो, पाप रूप हाथियों का नाश करने के लिये आप सिंह हो, तीनों जगत् में कोई भी प्राणी आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकते और तुम तीनों जगत के नाथ (मालिक) हो, अतः मेरे लिये सुख करो ॥१॥

तइ समरत लहंति झत्ति, वर-पुत्त-कलत्तइ ।
धण्ण-सुवण्ण-हिरण्ण-पुंण्ण, जण भुंजइ रज्जइ ॥
पिक्खइ मुक्ख असंख सुक्ख, तुह पास पसाइण ।
इय तिहुअण वर-कप्प-रुक्ख, सुक्खइ कुण मह जिण ॥२॥

शब्दार्थ

जण—मनुष्य
तइ—तुम्हारा
समरत—स्मरण करते ही
झत्ति—शीघ्र
वर-पुत्त-कलत्तइ—श्रेष्ठ पुत्र तथा पत्नी आदि
लहंति—पाते हैं
धण्ण-सुवण्ण-हिरण्ण-पुण्ण—धान्य, सोना, आभूषणों से पूर्ण
रज्जइ—राज्य
भुंजइ—भोगते हैं
पास—हे पार्श्वनाथ प्रभो !
तुह पसाइण—आपके प्रसाद से
असंख—अगणित
सुक्ख—सुख वाली
मुक्ख—मुक्ति को
पिक्खइ—देखते हैं, पाते हैं
इय—इसलिये
जिण—हे जिन !
तिहुअण—तीनों लोकों के लिये
वर-कप्प-रुक्ख—उत्कृष्ट कल्प वृक्ष के समान हो
मह सुक्खइ कुण—मेरे लिये सुख करो

भावार्थ—हे जिन ! मनुष्य आपका स्मरण करने से शीघ्र ही श्रेष्ठ पुत्र तथा श्रेष्ठ स्त्री आदि को प्राप्त करता है और धान्य, सोना आभूषण आदि संपत्तियों से परिपूर्ण राज्य का भोग करता है। हे पार्श्व नाथ प्रभो ! आपके प्रसाद से मनुष्य अगणित सौख्य वाले मोक्ष का अनुभव करता है, इसलिये आप 'त्रिभुवन वर कल्पवृक्ष' (तीनों लोकों के लिये उत्कृष्ट कल्पवृक्ष के समान) कहलाते हो; अतः मेरे लिये सुख करो ॥२॥

जर-जज्जर परिजुण्ण-कण्ण, नट्ठुट्ठ सुकूट्ठिण ।
चक्खु-क्खीण खएण खुण्ण, नर सल्लिय सूलिण ॥
तुह जिण सरण-रसायणेण, लहु हुंति पुणण्णव ।
जय धन्नंतरि पास महवि तुह रोग-हरो भव ॥३॥

शब्दार्थ

जिण—हे जिन !
तुह—आपके
सरण-रसायणेण—स्मरण रूप रसायण से
नर—जो मनुष्य
जर-जज्जर—ज्वर से जीर्ण हो चुके हो
सुकुट्ठिण—गलित कोढ से
परिजुण्ण-कण्ण—जिनके कान बह निकले हो
नट्ठुट्ठ—जिनके ओठ गल गये हो
खएण-खुण्ण—क्षय रोग से जो कृश हो गये हो
सूलिण-सल्लिय—जो शूल रोग से पीड़ित हो
लहु पुणण्णव—शीघ्र ही फिर जवान
हुंति—हो जाते है
जय-धन्नवंतरि पास—हे ससार भर के धनवंतरि पार्श्वनाथ प्रभो !
चक्खु-क्खीण—जिनकी आंखे निस्तेज पड़ गई हो
तुह महवि—तुम मेरे लिये भी
रोग हरो—रोग नाशक
भव—हो

भावार्थ—हे जिन ! तुम्हारे स्मरण रूप रसायन से वे लोग भी शीघ्र युवा सरीखे हो जाते हैं, जो ज्वर से जर्जरित हो गये हो, गलित कोढ से जिनके कान बह निकले हो, ओठ गल गये हो, आंखो से कम दीखने लग गया हो, जो क्षय रोग से कृश हो गये हो तथा शूल रोग से पीडित हो। इसलिये हे पार्श्वनाथ प्रभो ! तुम 'जयधन्नवतरि' (ससार भर के धनवतरि) कहलाते हो, अब आप मेरे भी रोग का नाश करो ॥ ३ ॥

विज्जा-जोइस-मत तत-सिद्धिउ अपयत्तिण ।
भुवन-ऽब्भुअ अट्ठविह सिद्धि, सिज्झहि तुह नामिण ॥
तुह नामिण अपवित्तओ वि, जण होइ पवित्तउ ।
त तिहुअण-कल्लाण-कोस, तुह पास निरुत्तउ ॥४॥

शब्दार्थ

तुह नामिण—तुम्हारे नाम से
अपयत्तिण—विना प्रयत्न के
विज्जा-जोइस-मत तत-सिद्धिउ—
विद्या, ज्योतिष् मत्र और तत्रो की सिद्धि होती है
भुवणऽब्भुअ—जगत् को आश्चर्य उपजाने वाली
अट्ठविह सिद्धि—आठ प्रकार की सिद्धिया
सिज्झहि—सिद्ध होती हैं।

तुह नामिण—तुम्हारे नाम से
अपवित्तओ वि—अपवित्र भी
जण—मनुष्य
पवित्तउ होइ—पवित्र हो जाता है
त—इसलिये
पास तुह—हे पार्श्वप्रभो ! तुम
तहुअण-कल्याण-कोस—त्रिभुवन कल्याण-कोष
निरुत्तउ—कहे गये हो

अर्थ—हे पार्श्वनाथ प्रभो ! आप 'त्रिभुवन-कल्याण-कोश' इसलिये कहे जाते हो कि आपके नाम का स्मरण-ध्यान करने से बिना प्रयत्न

किये ही विद्या, ज्योतिष, मन्त्र, तन्त्र आदि सिद्ध होते हैं, आठ प्रकार की सिद्धियां भी जो कि लोक में चमत्कार दिखलाने वाली हैं सिद्ध होती हैं और अपवित्र मनुष्य भी पवित्र हो जाते हैं ॥ ४ ॥

खुद्द-पउत्ताइ-मंत-तंत-जंताइं विसुत्ताइ ।
चर-थिर-गरल-गहुग्ग-खग्ग-रिउ-वग्गवि गंजइ ॥
दुत्थिय-सत्थ अणत्थ-घत्थ, नित्थारइ दय करि ।
दुरियइ हरउ स पास-देउ, दुरिअ-क्करि-केसरि ॥५॥

शब्दार्थ

खुद्द पउत्तइ—क्षुद्र पुरुषो द्वारा किये गये
मंत-तंत-जंताइ—मंत्र, तंत्र, यंत्रो आदि को
विसुत्तइ—निष्फल कर देता है
चर-थिर-गरल-गहुग्ग-खग्ग रिउ वग्गवि—जंगम विष, स्थिर विष, ग्रह भयंकर तलवार आदि शस्त्रो और शत्रु समुदाय का
गंजइ—पराभव कर देता है
अणत्थ-घत्थ—अनर्थों मे घिरे हुए
दुत्थिय सत्थ—परेशान प्राणियो को
दय करि—कृपा कर
नित्थारइ—बचा देता है
दुरिअ-करि-केसरि—पाप रूप हाथियो के लिये शेर समान
पास देउ—पार्श्वनाथ देव !
दुरियइ—पाप
हरउ—दूर करो
स—वह

भावार्थ—हे प्रभो ! 'दुरित-करि-केसरि' (पाप रूप हाथियो के लिये शेर समान) इसलिये कहलाते हो कि आप क्षुद्र आदमियों द्वारा किये गये मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र आदि को निष्फल कर देते हो। सर्प-सोमल आदि के विष को उतार देते हो; ग्रह दोषों को निवारण कर देते हो; भयकर तलवार आदि शस्त्र अस्त्रो के वारो को रोक देते हो; वैरियो के दलो को छिन्न भिन्न कर देते हो और अनर्थो मे फंसे हुए एवं

दु ख से परेशान प्राणियो के दु ख मेट देते हो। हे पार्श्वनाथ प्रभो! दया करके मेरे भी पापो का नाश करो ॥५॥

तुह आणा थभेइ भीम-दप्पुद्धु र-सुर-वर-
रक्खस-जक्ख-फणिंद-विंद-चोरानल-जलहर ॥
जल-थल-चारि रउद्द-खुद्द-पसु-जोइणि-जोइय ।
इय तिहुअणअविलघिआण, जय पास सुसामिय ॥६॥

शब्दार्थ

सुसामिय—हे सुनाथ
तुह आणा—तुम्हारी आज्ञा
भीम—भारी
दप्पुद्धुर—अहकार से उद्दड
सुरवर-रक्खस-जक्ख—भूत प्रेत आदि राक्षस, यक्ष
फणिंद-विंद—सर्पराजो के समूह
चोरानल-जलहर—चोर, अग्नि, मेघ को
जल-थल-चारि—जलचर, स्थलचर
रउद्द-खुद्द-पसु—अति भयकर हिंसक पशु
जोइणि-जोइय—योगिनी और योगी को
थभेइ—रोक देती है, स्तम्भित कर देती है
इय—इसलिये
तिहुअण-अविलघिआण पास—हे तीनो लोको मे जिसका हुक्म न रुके ऐसे पार्श्वनाथ प्रभो!
जय—तुम्हारी जय हो

भावार्थ—हे पार्श्वनाथ प्रभो! तुम्हारी आज्ञा बडे बडे घमण्डी और उद्दण्ड भूत-प्रेत आदि राक्षस, यक्ष और सर्पराजो के समूह, चोर अग्नि और मेघो, जलचर-मगरमच्छ, घडियाल आदि स्थल चर-सिंह, व्याघ्र आदि भयकर और हिंसक पशुओ, योगिनियो और योगियो के आक्रमणो को रोक देती है। इसीलिये आप त्रिभुवना-विलङ्घीताज्ञ (तीनो लोको मे जिसका हुक्म न रुके) हो ॥६॥

पत्थिय-अत्थ अणत्थ-तत्थ, भत्ति-ब्भर-निब्भर ।
रोमंचंचिय-चारु-काय किन्नर-नर-सुर-वर ।।
जसु सेवहि कम-कमल-जुयल, पक्खालिय-कलि-मलु ।
सो भुवण-त्तय-सामि पास, मह मद्दउ रिउ-बलु ।।७।।

शब्दार्थ

अणत्थ-तत्थ—अनर्थों से पीडित
पत्थिय-अत्थ—कल्याण के प्रार्थी
भत्तिब्भर-निब्भर—भक्ति के बोझ से नम्रीभूत
रोमंचंचिय—रोमाञ्च-विशिष्ट
चारुकाय—सुन्दर शरीर वाले
किन्नर-नर-सुरवर—किन्नर, मनुष्य और देवताओ मे उच्च देवता
जसु—जिसके
पक्खालिय-कलि-मलु—कलिकाल के पापो को नाश करने वाले
कम-कमल-जुयल—दोनो चरण कमलो की
सेवहि—सेवा करते हैं ।
भुवण-त्तय-सामि-पास—तीनो लोको के स्वामी पार्श्व नाथ प्रभो !
मह रिउ बलु मद्दउ—हमारे वैरियो के सामर्थ्य को चूर-चूर करो

भावार्थ—हे पार्श्व प्रभो ! अनेक अनर्थों से घबड़ाकर भक्ति वश रोमांचित होकर सुन्दर शरीरो को धारण करने वाले उच्च-उच्च किन्नर, मनुष्यो और देवता अर्थात् तीनो लोक के प्राणी आपके चरण कमलो की सेवा करते है, जिससे उनके क्लेश और पाप दूर हो जाते हैं, इसीलिये आप 'भुवन-त्रय-स्वामी' (तीनो लोको के स्वामी) कहलाते हो; अतः मेरे भी शत्रुओ का बल नष्ट करो ।।७।।

जय जोइय-मण-कमल-भसल, भय-पंजर कुंजर ।
तिहुअण-जण-आणंद-चंद, भुवण-त्तय-दिणयर ।।
जय मइ-मेइणि-वारिवाह, जय-जंतु पियामह ।
थंभणय-ट्ठिय पासनाह, नाहत्तण कुण मह ।।८।।

शब्दार्थ

जोइय-मण-कमल-भसल—हे योगियों के मनोरूप कमलों के लिये भौंरे
भय-पंजर-कुंजर—भय रूप पिंजरे के लिये हाथी
तिहुअण-जण-आणंद-चंद-हे तीनों लोकों के प्राणियों को आनंद देने के लिये चन्द्रमा
भुवण-त्तय-दिणयर—हे तीन जगत के सूर्य
जय—तुम्हारी जय हो
मइ-मेइणि-वारिवाह—हे मतिरूप पृथ्वी के लिये मेघ
जय-जंतु-पियामह—हे जगत् के प्राणियों के पितामह
जय—तुम्हारी जय हो
थंभणय-ट्ठिय-पासनाह-हे स्तम्भन पुर में विराजमान पार्श्व नाथ प्रभो !
मह नाहत्तण कुण—मुझे सनाथ करो

भावार्थ—हे स्तम्भनपुर में विराजमान पार्श्व नाथ प्रभो ! आप कमल पर भौंरे की तरह योगियों के मन में बसे हुए हो, हाथी की तरह भय रूप पिंजरे को तोडने वाले हो, चन्द्रमा की तरह तीनों लोकों को आनन्द उपजाने वाले हो, सूर्य की तरह तीनों जगत् का अन्धकार नष्ट करने वाले हो मेघ की तरह मतिरूप भूमि को सरस बनाने वाले हो और पितामह की तरह प्राणियों का पालन-पोषण करने वाले हो इसीलिये आपको 'जगतन्तु-पितामह' कहते हैं, अतः अब आप मेरे भी स्वामी बनो ॥ ८ ॥

बहुविह वन्नु अवन्नु सुन्नु, वन्निउ छप्पन्निहि,
मुक्ख-धम्म-कामत्थ-काम, नर नियं नियं-सत्थिहि ।
जं झायहि बहु दरिसणत्थ बहु-नाम-पसिद्धउ,
सो जोइय-मण-कमल-भसल, सुहु पास पवद्धउ ॥९॥

शब्दार्थ

पइं पासि—तुम्हें देखकर
वियसंत-नित्त-पत्तंत-पवित्तिय—
खिले हुए नेत्र रूप पत्तों मे निकलती हुई
वाह-पवाह-पवूढ-रूढ-दुह-दाह—
आँसुओं की धारा द्वारा धुल गये हैं चिर संचित दुःख और दाह जिनके
सपुलइय सुर-नर—पुलकित हुए हैं देव और मनुष्य

अप्पाणं—अपने आप को
मन्नु सउन्नु पुन्नु—मान्य-भाग्यशाली और पुण्यवान
मन्नइ—मानते हैं
इय—इसलिए
तिहुअण-आणंद-चंद-पास-जिणेसर·सर—हे तीन लोक के आनन्द को आनन्दित करने में चन्द्रमा के समान
जय—तुम्हारी जय हो

भावार्थ—हे पार्श्वनाथ प्रभो ! क्या देव क्या मनुष्य, कोई भी जब आपको देख लेते हैं तो उनकी आँखें खिल जाती हैं, उनसे (भक्ति से) भरपूर-आँसुओ की धारा वह निकलती है और चित्त प्रफुल्लित हो जाता है; मानों उन आँसुओ के द्वारा उनके चिर संचित दुःख और ताप धुलकर शात हो गए हैं; अत. दर्शन करने वाले अपने आपको भाग्यशाली, मान्य और पुण्यात्मा समझने लगते हैं। इसीलिए तुम 'त्रिभुवन-आनन्द-चन्द्र' (तीन लोक को आनन्द देने वाले चन्द्र के समान) हो। हे जिनेश्वर ! आपकी जय हो ॥११॥

तुह कल्लाण-महेसु घंट-टंकारव-पिल्लिय ।
वल्लिर-मल्ल-महल्ल-भत्ति, सुर-वर गंजुल्लिय ॥
हल्लुप्फलिय पवत्तयंति, भुवणेवि महूसव ।
इय तिहुअण आणंद चंद, जय पास सुहुब्भव ॥१२॥

शब्दार्थ

घट टकारव-पिल्लिय—घंटे की आवाज से प्रेरित हुए
वल्लिर-मल्ल–हिल रही है मालाएँ जिनकी
महल्ल-भत्ति—बड़ी भारी भक्ति वाले
गऊुल्लिय—रोम रचित
ह्ल्लुप्फल्लिय—हर्ष से प्रफुल्लित
सुर वर—देवेन्द्र
तुह-कल्लाण महेसु—तुम्हारे कल्याणक महोत्सवों पर
भुवणेवि—इस लोक मे भी
महूसव-पवत्तयति—महोत्सवों को विस्तारते हैं
इय—इसलिये
तिहुअण-आणद चद—तीन लोकों मे आनन्द उपजाने के लिये चन्द्रमा
सुहुब्भव पास—सुख की खान पार्श्व भगवान्
जय—तुम्हारी जय हो

भावार्थ—देवेन्द्र आपके कल्याणकोत्सव पर भक्ति की प्रचुरता से रोमांचित हो जाते हैं, उनकी मालाएँ हिलने-डोलने लगती हैं और हर्ष के मारे फूले नहीं समाते। तब वे यहा भी महोत्सवों की रचना रचते हैं तथा भूतलवासियों को भी आनन्दित करते हैं, इसलिये हे पार्श्व ! आपको 'सुखोद्भव' या 'त्रिभुवन आनन्द चन्द्र' (तीन लोक मे आनन्द उपजाने के लिये चन्द्रमा के समान) कहना चाहिये ॥१२॥

निम्मल-केवल-किरण-नियर-विहुरिय-तम-पहयर ।
दसिय-सयल-पयत्थ-सत्थ, वित्थरिय-पहा-भर ॥
कलि-कलुसिय-जण-घूय-लोय-लोयणह अगोयर ।
तिमिरइ निरु-हर पासनाह भुवण-त्तय-दिणयर ॥१३॥

जय-जंतुह जणएण तुल्ल, जं जणिय हियावहु ।
रम्मु धम्मु सो जयउ पासु, जय-जंतु-पिआमहु ॥१५॥

शब्दार्थ

कय—की गई
अविकल—निरन्तर
कल्लाण—कल्याण
वल्लि—परम्परा
उल्लूरिय—नष्ट किया है
दुह—दुखों का
वणु—वन
दाविय—दिखलाया गया
सग्ग—स्वर्ग और
पवग्ग—अपवर्ग का, मोक्ष का
मग्ग—मार्ग
दुग्गइ—दुर्गति का
गम—जाना
वारणु—रोकने वाला
जय—जगत् के
जंतुह—जन्तुओं का
जणएण—जनक के, पिता के,
तुल्ल—समान
जं—जिसके द्वारा
हियावहु—हितकारी और
रम्मु—रमणीक
धम्मु—धर्म
जणिय—प्रकट किया गया है
सो—वह
जयउ—जयवन्त रहे
पास—पार्श्वनाथ प्रभो
जय—जगत् के
जंतु—प्राणियों के
पियामहु—पितामह, दादा

भावार्थ—वह पार्श्वनाथ प्रभु संसार मे विशेष रूप से वर्तमान रहे कि जिन्होने जीवो का निरन्तर कल्याणों पर कल्याण किया, दु ख मिटाये, स्वर्ग और मोक्ष का रास्ता बतलाया, दुर्गति मे जाते हुए जीवो को रोका, एवं जिन्होने पिता की तरह जीवों का पालन पोषण किया, सुखकर और हितकर धर्म का उपदेश दिया, इसीलिये आप 'जग जन्तुपितामह' (विश्व के प्राणियों के पितामह-दादा) सिद्ध हुए, अतः आप सदा जयवन्त रहे ॥१५॥

भुवणारण्ण-निवास-दरिय-पर-दरिसण-देवय-
जोइणि-पूयण-खित्तवाल-खुद्दा-सुर-पसु-वय ।।
तुह उत्तट्ठ सुनट्ठ सुट्ठु, अविसठुलु चिट्ठहि ।
इय तिहुअण-वण-सीह पास, पावाइं पणासहि ।।१६।।

शब्दार्थ

भुवणारण्ण—जगत् रूप वन में	उत्तट्ठ—घबड़ाये हुए
निवास—रहने वाले	सुनट्ठ—भागे हुए
दरिय—अभिमानी	सुट्ठु—होशियारी से
पर-दरिसण—पर मत के मिथ्या दृष्टि	अविसठुलु—निश्चय ही
	चिट्ठहि—सावधान होकर
देवय—देवता	इय—इसलिये
जोइणि—योगिनी	तिहुअण—तीन लोक रूप
पूयण—पूतना	वण—वन में
खित्त वाल—क्षेत्रपाल	सीह—सिंह
खुद्दासुर—क्षुद्र असुर रूप	पास—हे पार्श्व प्रभो !
पसु-वय—पशुओं के झुण्ड	पावाइं—पापों को
तुह—तुम से	पणासहि—नष्ट करो

भावार्थ—संसार रूप वन में रहने वाले मदोन्मत्त पर-मत के देवता, बुद्ध आदि और योगिनी, पूतना, क्षेत्रपाल एवं क्षुद्र असुर रूप पशुगण तुम्हारे डर से मारे बेचारे घबड़ाये भागे और बड़ी होशियारी से रहने लगे, इसीलिये आप 'त्रिभुवन वन-सिंह' (तीन लोक रूप वन में सिंह के समान) हो। हे पार्श्व प्रभो ! मेरे पापों को भी दूर करो ।।१६।।

फणि-फण फार-फुरंत-रयण-कर-रंजिय-नह-यल ।
फलिणी-कंदल-दल-तमाल-नीलुप्पल-सामल ।।
कमठासुर-उवसग्ग-वग्ग-संसग्ग-अगंजिय ।
जय पच्चक्ख-जिणेस पास थंभणयपुर-ट्ठिय ।।१७।।

शब्दार्थ

फणि—धरणेन्द्र के
फण—फणा मे
फुरत—देदीप्यमान
रयण—रत्नो की
कर—किरणो ने
रंजिय—रंगे हुए
नहयल—नभस्तल, आकाश
फलिणी—प्रियङ्गु के
कदल—अकुर तथा
दल—पत्तो की
तमाल—तमाल की और
नीलुप्पल—काले कमल की तरह
सामल—श्यामल
कमठासुर कमठ नामक असुर के द्वारा
उवसग्ग—उपसर्गों को
वग्ग—अनेक
ससग्ग—किये गये
अगंजिय—जीत लेने वाले
जय—जय हो
पच्चक्ख—प्रत्यक्ष
जिणेस—जिनेश्वर
पास—पार्श्व
थभणयपुर—स्तम्भनपुर मे
ट्ठिय—विराजमान

भावार्थ—पार्श्वनाथ प्रभु ने जब 'कमठ' नामक असुर के उपसर्गों को सहा तब भक्ति वश धरणेन्द्र उनके संकटो को निवारण करने के लिये आया। उस समय धरणेन्द्र की फणो मे लगी हुई मणियो के प्रकाश मे भगवान् के शरीर की कान्ति ऐसी मालूम होती थी मानो वे प्रियंगु नामक लता के अंकुर तथा पत्ते है या तमाल वृक्ष और नीले कमल है। ऐसे हे स्तम्भनपुर मे विराजमान और प्रत्यक्षीभूत पार्श्व-जिनेश्वर! आप जयवत रहो ।।१७।।

मह मणु तरलु पमाणु नेय, वायावि विसंठुलु ।
नेय तणुरवि अविणय-सहावु, आलस-विहलंघलु ।।
तुह माहप्पु पमाणु देव, कारुण्ण-पवित्तउ
इय मइ मा अवहीरि पास, पालिहि विलवंतउ ।।१८।।

शब्दार्थ

मह मणु—मेरा मन
तरलु—चंचल है
पमाणु नेय—प्रमाण नहीं
वायावि विसंठुलु—वाणी भी चल-विचल है
तणुरवि—शरीर भी
अविणय-सहावु—अविनय स्वभाव
आलस-विहलंघलु—आलस से परवश है।
पमाणु नेय—वह भी प्रमाण नही है
तुह माहप्पु—तुम्हारा माहात्म्य
पमाणु—प्रमाण है
इय—इसलिये
पास देव—हे पार्श्व देव !
कारुण्ण पवित्तउ—दया से युक्त और
विलवंतउ—रोते हुए
मइ—मुझको
पालिहि—पालो
मा अवहीरि—मेरी अवहेलना मत करो

भावार्थ—हे पार्श्वदेव ! मेरा मन चंचल है, बोली अव्यवस्थित है और शरीर का तो स्वभाव ही अविनय रूप है तथा आलस्य के वशीभूत है, इसलिये ये कोई प्रमाण नहीं हैं, तुम्हारा माहात्म्य प्रमाण है। मैं रो रहा हूं, अतएव दया का पात्र हूं। आप मेरी अवहेलना मत करो, परन्तु रक्षा करो ।।१८।।

किं किं कप्पिउ नय कलुणु, किं किं व न जंपिउ ।
किं व न चिट्ठिउ किट्ठु देव, दीणयमवलंबिउ ।।

कासु न किय निफल्ल लल्लि, अम्हेहि दुहत्तिहि ।
तहवि न पत्तउ ताणु किंपि पइ पहु परिचत्तिहि ॥१६॥

शब्दार्थ

पइ—तुम सरीखे
पहु-परिचत्तिहि—प्रभु को छोड़ देने वाले
दुहत्तिहि—दुःखों से व्याकुल
अम्हेहि—हमारे द्वारा
दीणयमवलंबिउ—दीनता का अवलंबन करके
किं किं—क्या क्या
न—नहीं
कप्पिउ—कल्पित किया गया
किं किं न—क्या क्या नहीं
ताणु न—शरण नहीं
य कलुणु—करुणा रूप
न जंपिउ—बका नहीं गया
किं व किट्ठु—क्या क्या क्लेश रूप
न चिट्ठउ—चेष्टा नहीं की गई
कासु—किनके सामने
निप्फल लल्लि न किय—व्यर्थ लल्लो चप्पो नहीं की गई
तहवि—तो भी
किं वि न—कुछ भी नहीं
पत्तउ—प्राप्त किया

भावार्थ हे देव ! आपको छोड़कर और दुःखों को पाकर मैंने अपने मन में क्या-क्या कल्पनाएं न कीं, वाणी से क्या क्या दीन वचन न बोले, शरीर के क्या-क्या क्लेश न उठाये और किस की लल्लो चप्पो न की, लेकिन सब निष्फल गई और कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ ॥१९॥

तुहु सामिउ तुहु मायबप्पु, तुहु मित्त पियंकरु ।
तुहु गइ तुहु मइ तुहुजि ताणु, तुहु गुरु खेमंकरु ॥
हुउ दुहभरभारिउ वराउ, राउ निब्भग्गह ।
लीणउ तुह कम-कमल-सरणु, जिण पालहि चंगह ॥२०॥

शब्दार्थ

तुह सामिउ—तुम मालिक हो
तुह माय बप्पु - तुम माता-पिता हो
तुह पियंकरू मित्त—तुम प्रिय भलाई करने वाले मित्र हो
तुह गइ—तुम गति हो
तुह मइ—तुम मति हो
तुह खेमंकुरु-गुरु—तुम कल्याण-कारी गुरु हो
तुह-जित्ताण—तुम ही रक्षक हो
हुउ—मैं
दुह-भर-भारिउ—दुःखों के बोझ से दबा हुआ हूं
वराउ—क्षुद्र हूं
चंगह-निब्भग्गह राउ—उत्कृष्ट भाग्यहीनों का राजा हूं
तुह—तुम्हारे
कम-कमल-सरणु—चरण कमल की शरण में
लीणउ—लीन हो गया हूं, आ गया हूं
जिण—हे जिन
पालहि—रक्षा करो

भावार्थ—हे जिन ! तुम मालिक हो, तुम माता पिता हो, तुम प्रिय भलाई करने वाले मित्र हो, तुम से सुमति और सुगति प्राप्त होती है, तुम रक्षक हो और तुम ही कल्याण करने वाले गुरु हो । मैं दुःखों से पीड़ित हूं और बड़े से बड़े हतभाग्यों में शिरोमणि हूं; पर आपके चरण कमलों की शरण में आ पड़ा हूं; इसलिये मेरी रक्षा करो ।।२०।।

पइ किवि कय नीरोय लोय, किवि पाविय सुहसय ।
किवि मइमंत महंत केवि, किवि साहिय-सिव-पय ।।
किवि गंजिय-रिउ-वग्ग केवि, जस-धवलिय-भू-यल ।
मइ अवहीरहि केण पास, सरणागय-वच्छल ।।२१।।

शब्दार्थ

बहु-विह-दुह—अनेक प्रकार के दुःखों से
तत्त-गत्तु—तप्त शरीर वाला हूं
हउ—मैं
सुयणह—सज्जनों की
करुणिक्क-ट्ठाणु—करुणा का पात्र हूं
तुह निरु करुणाकरु—तुम निश्चय से ही करुणा की खान हो
दुह-नासण-परु—दुःखों को नाश करने में तत्पर हो
पास जिण—हे पार्श्व जिन !
हउ अणाह—मैं अनाथ हूं
तुहु—तुम
तिहुअण-सामिय—तीन भुवन के स्वामी हो
झसंत महं—विलाप करते हुए मेरी
जं अवहीरहि—जो उपेक्षा करते हो
पास—हे पार्श्वनाथ प्रभो !
इय न सोहिय—यह शोभा नहीं देता

भावार्थ—हे पार्श्व जिन ! मैं अनेक प्रकार के दुःखों से दुखित हूं और आप दुःखों को नाश करने में तत्पर रहते हो, मैं सज्जन पुरुषों की दया का पात्र हूं और आप दया के आधार हो, मैं अनाथ हूं और आप त्रिलोकीनाथ हो; इसलिये मुझे रोते हुए छोड़ देना, यह आपको हरगिज शोभा नहीं देता ।।२३।।

जुग्गा-ऽजुग्ग-विभाग नाह, न हु जोयहि तुह सम ।
भुवणुवयार-सहाव भाव करुणा-रस-सत्तम ।।
सम-विसमइं किं घणु नियइ, भुवि दाह समंतउ ।
इय दुहि-बंधव पास-नाह, मइ पाल थुणंतउ ।।२४।।

शब्दार्थ

नाह—हे नाथ, स्वामिन्
तुह सम—तुम सरीखे
जुग्गा ऽजुग्ग-विभाग—योग्य-अयोग्य का विचार
नाह—नहीं
जोयहि—करते हैं, देखते हैं
भुवणु वयार-सहाव-भाव—जगत् का उपकार करने के स्वभाव वाले
करुणा-रस-सत्तम—हे दया भाव से उत्तम
भुवि दाह—पृथ्वी के आताप को
समंतउ—शांत करता हुआ
सम-विसमइं—सम विषम
नियइ—देखता है
इय—इसलिए
दुहि-बंधव—हे दुखियों के बांधव
पास नाह—पार्श्वनाथ
थुणंतउ—स्तवन करते हुए
मइ—मेरी
पाल—रक्षा करो
कि घणु—क्या मेघ

भावार्थ—हे नाथ ! आप सरीखे सत्पुरुष यह विचार नहीं करते कि यह जीव उपकार करने के योग्य है अथवा अयोग्य है, क्योंकि जगत् का उपकार करने का आपका स्वभाव है। इस दयाभाव से ही आप इतने उच्च बने हैं। क्या पानी बरसाने के लिये बादल कभी यह सोचता है कि यह जगह एकसी है या ऊँची-नीची ? इसलिये हे पार्श्वनाथ ! मैं प्रार्थना करता हूं कि आप मेरी रक्षा करें क्योंकि आप दुखियों के बन्धु हैं ॥२४॥

नय दीणह दीणयं मुयवि अन्नु वि किवि जुग्गय ।
जं जोइवि उवयार करहि, उवयार समुज्जय ॥
दीणह दीण निहीणु जेण, तइ नाहिण चत्तउ ।
तो जुग्गउ अहमेव पास, पालहि मइं चंगउ ॥२५॥

शब्दार्थ

दीणह—दीनों की
जुग्गय—योग्यता
दीणयं—दीनता का
मुयवि—छोड़कर
अन्नु वि किवि नय—और कुछ भी नहीं है
जं जोइवि—जिसे देखकर
उवयार-समुज्जय—उपकार तत्पर
उवयार करहि—उपकार करते हैं
दीणह दीण—मैं दीनों से भी दीन हूं
निहीण—निर्बल हूं
जेण—जिससे
तइ नाहिणत्तउ—तुम सरीखे नाथ ने छोड़ दिया है
तो पास—इसलिये हे पार्श्व !
जुग्गउ अहमेव—योग्य मैं ही हूं
चंगउ—जैसे बने वैसे
मइ पालहि—मेरी रक्षा करो

भावार्थ—हे पार्श्व ! दीनता को छोड़कर दीनों की योग्यता और कुछ भी नहीं है, जिसे देखकर उपकारी लोग उपकार करते हैं। मैं दीनों से दीन और अत्यन्त निर्बल हूं, शायद इसलिये आपने मुझे छोड़ दिया है। पर मैं इसी कारण से उपकार के योग्य हूं: अतः जैसे बने वैसे मेरा पालन कीजिए ॥२५॥

अह अन्नुवि जुग्गय-विसेसु किवि मन्नहि दीणह ।
जं पासिवि उवयारु करइ, तुहु नाह समग्गह ॥
सुच्चिय किल कल्लाणु जेण, जिण तुम्ह पसीयह ।
किं अन्निण तं चेव देव, मा मइ अवहीरह ॥२६॥

शब्दार्थ

समग्गह नाह—हे विश्व के नाथ !
अह—यदि
तुहु—तुम

किवि अन्नुवि—कोई और
दोण्ह—दोनों को
जुग्गय-विसेसु—योग्यता विशेष
मन्नहि—मानते हैं
जं पासिवि—जिसे देखकर
उवयारु करइ—उपकार करते हो
जेण—जिससे
जिण—हे जिन !
तुम्ह पसीयह—तुम प्रसन्न होते हो

सुच्चिय किल कल्लाणु—तो वही कल्याणकारी होगी
देव—हे देव !
किं अन्निण—और से क्या
तं चेव—वही (करो)
मह—मेरी
मा अवहीरह—अवहेलना मत करो

भावार्थ—हे विश्वनाथ ! यदि आप दोनों की कोई अन्य योग्यता मानते हो कि जिसे देखकर उपकार करते हो तो हे जिन ! प्रसन्न होओ और वही योग्यता (रत्नत्रय) मुझमें पैदा करो, वही कल्याणकारी है और से क्या मतलब; हे देव ! मेरी उपेक्षा मत करो ।।२६।।

तुह पत्थण न हु होइ विहलु, जिण जाणउ किं पुण ।
हउ दुक्खिय निरु सत्त-चत्त, दुक्कहु उस्सुय-मण ।।
तं मन्नउ निमिसेण एउ एउ, वि जइ लब्भइ ।
सच्चं जं भुक्खिय-वसेण किं उंबरु पच्चइ ।।२७।।

शब्दार्थ

जिण—हे जिन
जाणउ—मैं जानता हूं कि
तुह पत्थण—तुम से की गई प्रार्थना

हु—नियम से
विहलु न होइ—निष्फल नहीं होती
हउ—मैं

निरु—अवश्य
दुक्खिय—दुखित
सत्त-चत्त—शक्ति रहित
दुक्कहु—रुचि रहित
उस्सुय मण—उत्सुक हूं
तं – इसलिये
जइ मन्नउ—यदि मैं यह मानता हूं
निमिसेण—पलक मारते ही
एउ एउ विलब्भइ—अमुक अमुक प्राप्त हो
कि पुण—तो फिर क्या हुआ
सच्चं जं —यह सत्य है कि
भुक्खिय-वसेण—भूख के कारण
कि—क्या
उंबरु पच्चइ—उदम्बर पकता है

भावार्थ—हे जिन ! मैं यह जानता हूं कि आप से की गई प्रार्थना व्यर्थ नहीं जा सकती, तो मैं दुखित हूं, निर्बल हूं और फल प्राप्ति का अतिपय लालची हूं; इसलिये मैं यदि यह समझूँ कि अमुक-अमुक मुझे पलक मारते ही मिले जाते हैं, तो इसमें क्या आश्चर्य है ? हाँ ! यह ठीक है कि भूख के कारण उदम्बर शीघ्र थोड़े ही पक सकते हैं ? ॥२७॥

तिहुअण–सामिय पासनाह, मइ अप्पु पयासिउ ।
किज्जउ जं निय-रूव-सरिसु, न मुणउ बहु जंपिउ ॥
अन्नु न जिण जगि तुह समोवि, दक्खिन्न-दयासउ ।
जइ अवगन्नसि तुह जि अहह, कह होसु हयासउ ॥२८॥

शब्दार्थ

तिहुअण-सामिय— हे तीन लोक के मालिक
पास नाह —पार्श्वनाथ
मइ—मेरे द्वारा
अप्पु पयासिउ —आत्मा, प्रकाशित किया गया
जं — इसलिये

नियं रूव-सरिसु किज्जउ—निज रूप समान कर लो
न मणउ—मैं नहीं जानता
बहु जंपउ—बहुत बकना, बोलना
जिण—हे जिन !
जगि—संसार में
दक्खिन्न-दयासउ—उदारता और दया का स्थान
तुह समोवि—तुम्हारे समान भी
अन्नु न—और नहीं है
तुह जि तुम ही
जइ—यदि
अवगन्नसि—मेरी अवहेलना करोगे
अहह—हाय
कह होसु-हयासउ—कैसे हताश न हो जाऊँगा।

भावार्थ—हे तीन लोक के नाथ पार्श्वनाथ ! मैंने आपके सामने अपना हृदय खोलकर रख दिया है, अब मुझे आप अपने समान बना लीजिये, बस अब मैं आप से और कुछ नही कहना चाहता। हे जिन ! दयालु तो आप इतने हैं कि संसार में आपके बराबर कोई दयालु नहीं है। फिर भी यदि आप ही मेरी उपेक्षा करेंगे तो हाय ! मैं कैसे हताश न हो जाऊँगा ॥२८॥

जइ तुह रूविण किणवि पेय-पाइण वेलवियउ।
तुवि जाणउ जिण पास तुम्हि, हउं अंगीकरिउ ॥
इय मह इच्छिउ जं न होइ, सा तुह ओहावणु।
रक्खंतह नियं-कित्ति णेय, जुज्जइ अवहीरणु ॥२९॥

शब्दार्थ

जिण—हे जिन !
जइ—यद्यपि
तुह रूविण—तुम्हारे रूप में
किणवि—शायद किसी
पेय-पाइण—प्रेत ने
वेलवियउ - मुझे ठग लिया है
तुवि—तो भी
जाणउ—मैं यही जानता हूं कि
हउं—मैं
तुम्हि अंगीकरिउ—तुम से ही स्वीकार किया गया हूं

पास—हे पार्श्व !
मह इच्छिउ—मेरा मनोरथ
जं न होइ—यदि सिद्ध न हुआ तो
सा—वह
तुह ओहावण—तुम्हारी लघुता है
इय—इसीलिये
निय-कित्ति—अपनी कीर्ति की
रक्खंतह—रक्षा करो
अवहीरण णेय जुज्जइ—अवहेलना करना युक्त नहीं है

भावार्थ – हे जिन ! यद्यपि आपके रूप में मुझे किसी प्रेत आदि ने ही दर्शन दिया हो, लेकिन मैं यही जानता हूं कि मुझे आपने ही स्वीकार किया है; इसलिये अगर मेरा मनोरथ सफल न हुआ तो इसमें आपकी ही लघुता है। अतः आप अपनी कीर्ति की रक्षा कीजिये, मेरी अवहेलना करना ठीक नहीं है ॥२९॥

एह महारिय जत्त देव, इहु न्हवण–महूसउ ।
जं अणलिय-गुण-गहण तुम्ह, मुणि-जण-अणिसिद्धिउ ॥
एम पसीअसु पास नाह थंभणयपुर–ट्ठिय ।
इय मुणिवरु सिरि-अभयदेउ, विन्नवइ अणिंदिय ॥३०॥

शब्दार्थ

देव—हे देव !
एह महारिय जत्त—यह मेरी यात्रा
इहु न्हवण महूसउ—यह स्नान महोत्सव
तुम्ह—तुम्हारा
अणालिय-गुह-गहण—यथार्थ गुणों का गान
जं—जो
मुणि-जण-अणिसिद्धिउ—मुनि जनों से प्रशंसित है
एम—इसलिये
थंभणयपुर-ट्ठिय—स्तम्भनपुर में विराजमान
पासनाह—श्री पार्श्वनाथ

पसीअसु—मुझ पर प्रसन्न होओ
इय—यह
मुणिवर सिरि-अभयदेउ—मुनियों में श्रेष्ठ श्री अभयदेव
अणिंदिय—जो कि जगत् में प्रशंसित है
विन्नवइ—प्रार्थना करता है

भावार्थ—हे देव ! आपकी यह यात्रा, यह अभिषेक महोत्सव और यह स्तवन, जिसमें कि आपके यथार्थ गुण वर्णन किये गये हैं और जो मुनियों से भी प्रशंसा प्राप्त करने के लायक हैं, मैंने किया है, इसलिये हे स्तम्भनपुर स्थित श्री पार्श्वनाथ प्रभो ! प्रसन्न होओ; यह लोक पूजित साधु प्रवर श्री अभयदेवसूरि विज्ञप्ति करता है ॥३०॥

४१—जय महायस

जय महायस जय महायस जय महाभाग
जय चिंतिय सुह-फलय,
जय समत्थ-परमत्थ-जाणय जय जय गुरु गरिम गुरु ।
जय दुहत्त-सत्ताण ताणय थंभणय-ट्ठिय पास-जिण, ।
भवियह भीम-भवुत्थु भय अवणिताणंतगुण ।
तुज्झ तिसंझ नमोत्थु ॥ १ ॥

शब्दार्थ

जय जय जय—तेरी वार वार जय हो
महायस—हे महायशस्विन्
महाभाग—हे महाभाग
चिंतिय-सुह-फलय—चिंतित शुभ फल के दायक
समत्थ-परमत्थ-जाणय—हे सम्पूर्ण तत्त्वों के जानकार

जय जय—तेरी जय हो, तेरी जय हो
गुरु-गरिम—हे प्रधान गौरवशाली
गुरु—गुरो
तिसंझ तीनों संध्याओं के समय
नमोत्थु—नमस्कार हो
दुहत्त-सत्ताण—दुखित प्राणियों के
ताणय—रक्षक
जय—तेरी जय हो।
थंभणय-ट्ठिय—स्तम्भनपुर में विराजमान
पास जिण—हे पार्श्व जिन !
भवियह—भव्यों के
भीम—भयानक
भवुत्थु—संसार को नाश करने के लिये अस्त्र के समान
भय—भय
अविणंताणंत गुण—अनन्तानंत गुणों के धारक
तुज्झ—तुमको

भावार्थ—हे महायशस्विन् ! हे महाभाग्य ! हे चिंतित (इष्ट) शुभ फल के दायक ! हे सम्पूर्ण तत्त्वों के जानकार ! हे प्रधान गौरव-शाली गुरो ! हे दुखित प्राणियों के रक्षक ! आपकी जय हो, आपकी जय हो, आपकी बार बार जय हो। हे भव्य जीवों के भयानक संसार के नाश करने के लिये अस्त्र समान। हे अनतानन्त गुणों के धारक भगवन् ! स्तम्भनपुर में विराजमान पार्श्व प्रभो ! आपको तीनों संध्याओं के समय नमस्कार हो ॥१॥

४१ श्रुत देवता की स्तुति

सुवर्ण-शालिनी देयाद् द्वादशांगी जिनोद्भवा।
श्रुतदेवी सदा मह्य-मशेष-श्रुत-संपदम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

सुवर्ण-शालिनी—सुन्दर सुन्दर वर्णवाली
जिनोद्भवा—जिनेश्वर प्रभु की कही हुई
द्वादशांगी—द्वादशांगी रूप
श्रुतदेवी—हे श्रुतदेवी !
सदा—हमेशा
मह्यम्—मुझे

अशेष—सकल	सम्पदम्—सम्पत्ति
श्रुत—शास्त्रों को	वेयाद्—देती रहो

भावार्थ—सुन्दर सुन्दर वर्ण वाली, जिनेश्वर प्रभु की कही हुई द्वादशांगी रूप हे श्रुतदेवी ! मुझे सकल शास्त्रों की सम्पत्ति देती रहो ॥१॥

४३—क्षेत्र देवता की स्तुति

यासां क्षेत्र-गताः सन्ति, साधवः श्रावकादयः ।
जिनाज्ञां साधयन्तस्ता रक्षन्तु क्षेत्र-देवताः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

यासां—जिनके	आज्ञा को
क्षेत्र-गताः—क्षेत्र में रह कर	साधयन्तः—पालते हैं
साधव—साधु	ता—वे
श्रावकादयः—तथा श्रावक आदि	क्षेत्र-देवताः—क्षेत्र देवता
जिनाज्ञां—जिन भगवान् की	रक्षन्तु—हमारी रक्षा करें

भावार्थ—जिनके क्षेत्र में रहकर साधु तथा श्रावक आदि जिन भगवान् की आज्ञा को पालते है वे क्षेत्र देवता हमारी रक्षा करें ॥१॥

४४—'नमोऽस्तु वर्धमानाय'

इच्छामो अणुसट्ठिं णमो खमासमणाणं ।

शब्दार्थ

इच्छामो—हम चाहते हैं	खमासमणाणं—क्षमाश्रमणों को
अणुसट्ठिं—गुरु आज्ञा	णमो—नमस्कार हो

भावार्थ—हम गुरु आज्ञा चाहते हैं—क्षमाश्रमणों (मुनिराजों) को नमस्कार हो ।

नमोऽस्तु वर्धमानाय, स्पर्धमानाय कर्मणा
तज्जयावाप्तमोक्षाय, परोक्षाय कुतीर्थिनाम् ॥ १ ॥

येषां विकचारविन्दराज्या,
ज्यायः क्रमकमलावलिं दधत्या
सदृशैरतिसंगतं प्रशस्यं,
कथितं सन्तु शिवाय ते जिनेन्द्राः ॥ २ ॥

कषाय तापार्दितजन्तुनिर्वृत्तिं,
करोति यो जैनमुखाम्बुदोद्गतः ।
स शुक्रमासोद्भववृष्टिसन्निभो,
दधातु तुष्टिं मयि विस्तरो गिराम् ॥ ३ ॥

श्वसित–सुरभि–गन्धा–ऽऽलीढ भृंगी कुरंगं
मुखशशिनमजस्रं, बिभ्रति या बिभर्ति
विकच–कमलमुच्चैः सा–ऽस्त्वचिन्त्य–प्रभावा,
सकल–सुखविधात्री, प्राणभाजां श्रुतांगी ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

नमोस्तु—नमस्कार है
वर्धमानाय—श्री वर्धमान स्वामी को, श्री महावीर स्वामी को
स्पर्धमानाय—स्पर्धा करने वाले मुकाबिला करने वाले
कर्मणा—कर्म के साथ, कर्म से
तज्जय—उसपर विजय पाकर, उसे जीतकर
अवाप्त—प्राप्त हुए
मोक्षाय—मोक्ष को
परोक्षाय—अगम्य, परोक्ष
कुतीर्थिनाम्—मिथ्यात्वियों को, अन्य मत वालों को

येषां—जिनके
विकच—खिले हुए, विकस्वर
अरविन्द—कमलों की
राज्या—पंक्ति के निमित्त से
ज्यायः—सुन्दर, प्रशंसनीय
क्रमकमल—चरण कमल की
आवलि—पंक्ति को, श्रेणि को
दधत्या—धारण करने वाली
सदृशै—समान के साथ
इति—इस प्रकार
सङ्गतं—मेल समागम, संगत
प्रशस्यं—प्रशंसा करने योग्य
कथितं—कहा है
सन्तु—हो
शिवाय—मोक्ष के लिये, कल्याण के लिये
ते—वे
जिनेन्द्राः—जिनेश्वरों
कषाय—कषाय रूप
ताप—ताप से
अर्दित—पीड़ित दुखी
जन्तु—प्राणियों को
निर्वृति—शांति
करोति—करता है
यो—जो
जैन—जिनेश्वर के, जिनेश्वर सम्बन्धी

मुख—मुख रूप
अम्बुद्—मेघ से
उद्गत—प्रकट हुआ, उत्पन्न हुआ
स—वह
शुक्रमास—ज्येष्ठ मास में
उद्भव—होने वाली
वृष्टि—वृष्टि के, वर्षा के
सन्निभो—समान
दधातु—करो, धारण करो
तुष्टिं—तुष्टि, संतोष, अनुग्रह
मयि—मुझ पर
विस्तरो—विस्तार
गिराम्—वाणी का
या—जो
श्वसित—श्वास की
सुरभिगंध—सुगन्ध में
आलीढ—मग्न
भृङ्गी-कुरङ्ग—भंवरे रूपी हरिण वाले
मुख शशिनं—मुख चन्द्र को
बिभ्रति—धारण करती हुई
या—वह
उच्चै—सुन्दर रीति से
विकचकमलं—विकसित कमल को
बिभर्ति—धारण करती है
अचिंत्य—अचिन्त्य

प्रभावा—महात्म्य वाली, प्रभाव वाली
श्रुताङ्गी—श्रुतदेवी
प्राणभाजां—जीवों को
सकल सुख—सम्पूर्ण सुख
विधात्री—करने वाली
अस्तु—हो

श्री महावीर स्वामी की स्तुति

भावार्थ—जो कर्म शत्रुओं के साथ युद्ध करते-करते अन्त में उन पर विजय पाकर मोक्ष को प्राप्त किये हुए हैं तथा जिनका स्वरूप मिथ्यात्वियों के लिये अगम्य है; ऐसे श्री महावीर प्रभु को मेरा नमस्कार हो ॥१॥

सर्व तीर्थंकर देवों की स्तुति

जिन जिनेश्वरों के उत्तम चरण कमलों की पंक्ति को धारण करने वाली देवरचित खिले हुए स्वर्ण कमलों की पंक्ति के निमित्त से अर्थात् उसे देखकर विद्वानों ने कहा है कि सदृशों के साथ अत्यन्त समागम होना प्रशंसा के योग्य है (ऐसी कहावत को जिनेश्वर देवों के सुन्दर चरणों को धारण करने वाली ऐसी देव रचित खिले हुए कमलों की पंक्ति को देखकर ही विद्वानों ने प्रचलित किया है) ऐसे जिनेश्वरदेव सबके लिये कल्याणकारी हों - मोक्ष के लिये हों ॥२॥

तीर्थंकरों की स्याद्वादमयी द्वादशांग वाणी की स्तुति

जिनेश्वर देवों की वाणी ज्येष्ठ मास के मेघ वर्षा के समान अति शीतल है, अर्थात् जैसे ज्येष्ठ मास की वृष्टि ताप से पीड़ित लोगों को शीतलता पहुँचाती है; वैसे ही भगवान् की वाणी कषाय से पीड़ित प्राणियों को शांति लाभ कराती है ऐसी शांतिदायक वाणी का मुझ पर अनुग्रह हो ॥३॥

श्रुतदेवी की स्तुति

वह अचिन्त्य प्रभाव वाली श्रुतदेवी प्राणियों को सम्पूर्ण

सुख को देने वाली हो, जो अपने श्वास की सुगन्ध से आकृष्ट भ्रमर रूपी कुरंग वाले मुखचन्द्र को धारण करती हुई सुन्दर विकसित कमल को धारण करती है ॥४॥

४५—वर कनक सूत्र

ओं वर-कणय-संख-विद्दुम-मरगय
घण-सन्निहं-विगय-मोहं ।
सत्तरि-सयं जिणाणं, सव्वामर-पूइयं वंदे ॥ १ ॥

शब्दार्थ

वर कणय—श्रेष्ठ सुवर्ण
संख—शंख
विद्दुम—विद्रुम, प्रवाल
मरगय—मरकत, नीलम मणि
घण सन्निहं—मेघ जैसे वर्ण वाले
विगय मोहं—जिनका मोह नष्ट हो गया है ।
सव्वामर पूइयं—सब देवों द्वारा पूजित
सत्तरि-सयं—एक सौ सत्तर
जिणाणं—जिनेश्वरों को
वन्दे—मैं वन्दन करता हूं

भावार्थ—यहां एक सौ सत्तर[1] तीर्थंकरों को वन्दन किया है। ये सब मोह रहित हैं तथा सब देवताओं से पूजित हैं एवं उनके वर्ण भिन्न-भिन्न हैं। कोई श्रेष्ठ सुवर्ण समान पीले वर्ण के हैं, कोई शंख

१—एक साथ उत्कृष्ट (अधिक से अधिक) १७० तीर्थंकर ढाई द्वीप में होते हैं। ऐसा समय इस अवसर्पिणी काल में वर्तमान चौबीसी में श्री अजितनाथ के समय में था। उस समय पाँचों भरत में एक-एक, पाँचों एरावत में एक-एक तथा पाँचों महाविदेह के प्रत्येक के बत्तीस विजय और प्रत्येक विजय में एक-एक तीर्थंकर हुए; इस प्रकार सब मिलाकर ५+५ (३२×५)=५+५+१६०=१७० संख्या हुई।

जैसे सफेद वर्ण वाले हैं, कोई प्रवाल जैसे लाल वर्ण वाले हैं, कोई नीलम मणि जैसे वर्ण के हैं और कोई मेघ जैसे श्याम वर्ण वाले हैं। इन पाँचों वर्णों में सब तीर्थंकरों के वर्ण आ जाते हैं। इन सबको मैं वन्दन करता हूं।

ओं भवणवइ-वाणमंतर-जोइसवासो विमाण-वासी य।
जे केवि दुट्ठ-देवा, ते सव्वे उवसमंतु मे ॥२॥ स्वाहा।

शब्दार्थ

जे केवि—जो कोई भी
भवणवइ—भवनपति
वाणमंतर—वाणव्यंतर
जोइसवासी—ज्योतिप देव
य—और
विमाणवासी—विमानवासी देव
ओं स्वाहा—मंगल और मंत्र के सूचक हैं
दुट्ठ—दुष्ट
देवा—देवता हैं
ते—वे
सव्वे—सव
मे—मेरे लिये
उवसमंतु—शांत हों

भावार्थ—भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक ये चार प्रकार के देव हैं, उनमें जो कोई दुष्ट देव हों वे सब मेरे लिये उपशांत हों ॥२॥

४६ श्रीस्तम्भन पार्श्वनाथ-चैत्यवन्दन

श्रीसेढो-तटिनी-तटे पुर-वरे, श्रीस्तम्भने स्वर्गिरौ,
श्री पुज्याभयदेव-सूरि-विबुधाधीशैः समारोपितः।
संसिक्तः स्तुतिभिर्जलैः शिवफलैः स्फूर्जत्फणा-पल्लवः,
पार्श्वः कल्पतरुः स मे प्रथयतां, नित्यं मनो-वांछितम् ॥१॥

शब्दार्थ

श्रीसेढी—श्री सेढ़ी
तटिनी—नदी के
तटे—किनारे पर, तीर पर
श्रीस्तम्भने—श्री खंभात नामक
पुर-वरे—सुन्दर शहर में
स्वर्गिरौ—सुमेरू पर्वत के समान है
श्री—समृद्धशाली
श्री पूज्याभयदेव सूरि—पूज्य श्री अभयदेवसूरि ने
विबुधाधीशैः—इन्द्रों ने
प्रयपतां—देवें
नित्यं-सदा
समारोपितः—स्थापित किया
शिवफलैः—जिनका फल मुक्ति है
स्तुतिभिर्जलै—स्तुति रूप जल से
संसिक्त—सिंचन किया
स्फूर्जत्फणा-पल्लवः—जिनके नाग फण रूप पल्लव का चिन्ह है
पार्श्वः—ऐसे श्री पार्श्वनाथ प्रभु
कल्पतरुः—कल्पतरु के समान
स—वह
मे—मुझे
मनोवांछितं—मनोवांछित फल दें

भावार्थ—श्री सेढी नामक नदी के तीर पर सुन्दर तथा शारीरिक पीड़ा का नाश करने वाला जीरावल्ली नामक तीर्थ वाला खंभात शहर, जो समृद्धशाली होने के कारण सुमेरू पर्वत के समान है उस नगर में श्री अभयदेवसूरि ने कल्पवृक्ष के समान श्री पार्श्वनाथ प्रभु को स्थापित किया और जल सदृश स्तुतियों के द्वारा इसका सिंचन अर्थात् उसको अभिषिक्त किया। भगवान् पर जो नागफण का चिन्ह है, वह पल्लव के समान है। मोक्ष फल को देने वाले ऐसे पार्श्वनाथ रूप कल्पतरु मेरे मनोवांछित को नित्य पूर्ण करे ॥१॥

आधिव्याधि-हरो, देवो, जीरावल्ली-शिरोमणिः ।
पार्श्वनाथो जगन्नाथो, नत-नाथो नृणां श्रिये ॥२॥

शब्दार्थ

आधि व्याधि-हरो देवो—आधि तथा व्याधि को हरने वाले देव
जीरावल्ली-शिरोमणी—जीरा वल्ली नामक तीर्थ के नायक
पार्श्वनाथो जगन्नाथो—जो जगत् के नाथ पार्श्वनाथ स्वामी हैं
नत नाथो—महान् पुरुषों से पूजित
श्रिये—सम्पत्ति के लिये हो
नृणां—सब मनुष्यों की

भावार्थ—आधि तथा व्याधि को हरने वाले अर्थात् मानसिक तथा शारीरिक पीड़ा को नाश करने वाले जीरावल्ली नामक तीर्थ के नायक और अनेक महान् पुरुषों से पूजित, ऐसे जो जगत् के नाथ पार्श्वनाथ स्वामी हैं, वे सब मनुष्यों को सम्पत्ति के कारण हों ॥२॥

४७ सिरि-थंभणय-ठिय-पास-सामिणो ।

सिरि-थंभणय-ठिय-पास-सामिणो सेस-तित्थ-सामीणं ।
तित्थ-समुन्नइ-कारण-सुरासुराणं च सव्वेसिं ॥१॥
एसिमहं सरणत्थं, काउस्सग्गं करेमि सत्तीए ।
भत्तीए गुण-सुट्ठियस्स संघस्स समुन्नइ निमित्तं ॥२॥

शब्दार्थ

सिरि-थंभणय-ठिय—श्री स्तम्भन पुर में स्थित
पास-सामिणो—पार्श्वनाथ स्वामी
सेस-तित्थ-सामिणं—शेष तीर्थों के स्वामी
च—और
तित्थ समुन्नइ-कारणं—तीर्थों की उन्नति के कारण भूत
सुरासुराणं—सुरों तथा असुरों
एसि-सव्वेसिं—इन सब को
सरणत्थं—स्मरण के लिये
गुण सुट्ठियस्स—सुस्थित गुणों वाले
संघस्स—संघ को

समुप्पइ निमित्तं—उन्नति के लिये
अहं—मैं
सत्तीए—शक्ति के अनुसार
भत्तीए—भक्ति पूर्वक
काउस्सग्ग करेमि—कायोत्सर्ग करता हूं

भावार्थ—हे स्तम्भन तीर्थ में स्थित पार्श्वनाथ प्रभो ! शेष तीर्थों के स्वामी और तीर्थों की उन्नति के कारणभूत सुर-असुर इन सब के स्मरण निमित्त तथा गुणवान श्री संघ की उन्नति के लिये मैं शक्ति के अनुसार भक्ति पूर्वक कायोत्सर्ग करता हूं ॥१-२॥

४८ श्री गुरुदेव दादा जिनदत्तसूरिजी का स्मरण ।

श्री खरतरगच्छ शृंगारहार जंगम-युगप्रधान भट्टारक दादा श्रीजिनदत्तसूरिजो चारित्र चूड़ामणि आराधनार्थं करेमि काउसग्गं ।

४९ श्री गुरुदेव दादा जिन कुशलसूरिजी का स्मरण ।

श्री खरतरगच्छ शृंगारहार जंगम-युगप्रधान भट्टारक दादा श्रीजिनदत्तसूरिजो चारित्र चूड़ामणि आराधनार्थं करेमि काउस्सग्गं ।

५० चउक्कसाय सूत्र

चउक्कसाय-पडिमल्लुल्लूरणु,
दुज्जय-मयण-बाण-मुसुमूरणु ।
सरस-पियंगु-वण्णु गय-गामिउ,
जयउ पासु भुवणत्तय-सामिउ ॥१॥

जसु तणु-कंति-कडप्प-सिणिद्धउ,
सोहइ फणिमणिकिरणालिद्धउ।
नं नव-जलहर-तडिल्लय-लंछिउ,
सो जिणु पासु पयच्छउ वंछिउ ॥२॥

शब्दार्थ

चउक्कसाय-पडिमल्लुल्लूरणु—चार कषायरूपी शत्रु योद्धाओं का नाश करने वाले।

चउक्कसाय—क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय। पडिमल्ल-सामने लड़नेवाला योद्धा। उल्लूरणु-नाश करने वाला।

दुज्जय-मयण-वाण-मुसुमूरणु—कठिनाई से जीते जायँ ऐसे कामदेव के वाणों को तोड़ देने वाले।

दुज्जय-कठिनाई से जीता जाय ऐसा। मयण-वाण-काम देव के वाण। मुसुमूरणु-तोड़ देने वाला।

सरस-पियंगु-वण्णु—नवीन (ताजा) प्रियङ्गु लता जैसे वर्णवाले।

सरस-ताजा, नवीन। पियंगु-एक प्रकार की वनस्पति, प्रियङ्गु। वण्णु-वर्ण, रंग।

गय-गामिउ—हाथी के समान गतिवाले।

जयउ—जय को प्राप्त हों।

पासु—पार्श्वनाथ।

भुवणत्तय-सामिउ—तीनों भुवन के स्वामी।

जसु—जिनके

तणु-कंति-कडप्प—शरीर का तेजोमण्डल।

सिणिद्धउ—कोमल, मनोहर।

सोहइ—शोभित होता है।

फणि मणि किरणालिद्धउ—नागमणि के किरणों से युक्त। फणि-नाग। मणि-मस्तक पर

नं—वस्तुतः।

नव-जलहर—नवीन मेघ।
नव-नवीन। जलहर-मेघ, बादल।
तडिल्लय-लंछिउ—बिजली से युक्त
तडिल्लय-बिजली। लंछिउ-युक्त, सहित।
सो—वह, वे
जण—जिन
पासु—श्री पार्श्वनाथ
पयच्छउ—प्रदान करें
वंछिउ-वाञ्छित, मनोवाञ्छित।

भावार्थ—चार कषायरूपी शत्रु-योद्धाओं का नाश करने वाले, कठिनाई से जीते जायें ऐसे कामदेव के बाणों को तोड़ देने वाले, नवीन प्रियङ्गुलता के समान वर्णवाले, हाथी के समान गतिवाले, तीनों भुवन के स्वामी श्री पार्श्वनाथ जय को प्राप्त हों ॥१॥

जिनके शरीर का कांति मण्डल मनोहर है, जो नागमणि की किरणों से युक्त और जो वस्तुतः बिजली से युक्त नवीन मेघ हों, ऐसे शोभित हैं वे श्री पार्श्वजिन मनोवाञ्छित फल प्रदान करें ॥२॥

५१—अर्हन्तो भगवन्त।

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धि-स्थिता,
आचार्या जिन-शासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः।
श्री सिद्धान्त-सुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः।
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु वो मंगलम ॥१॥

शब्दार्थ

इन्द्रमहिताः—इन्द्रों से पूजित
अर्हन्तो भगवन्त—अरिहंत भगवान्
च—और
सिद्धिस्थिता सिद्धा—मुक्ति मे स्थित सिद्ध भगवान्

जिन-शासनोन्नतिकरा—जिन शासन की उन्नति करने वाले

आचार्य—आचार्य महाराज

श्री सिद्धान्त सुपाठका:—सिद्धान्त को पढ़ाने वाले

पूज्य-उपाध्यायका—पूजनीय उपाध्याय महाराज

रत्न त्रयाराधका:—तीन रत्नों की आराधना करने वाले

मुनिवरा:—श्रेष्ठ मुनि महाराज

एते पंच—ये पांच

परमेष्ठिन:—परमेष्ठी

प्रतिदिनं—प्रतिदिन

वो—आपका

मंगलं कुर्वन्तु—मंगल करें

भावार्थ—इन्द्रों से पूजित श्री तीर्थंकर देव, मुक्ति में स्थित श्री सिद्ध भगवान्, जिनशासन की उन्नति करने वाले श्री आचार्य महाराज, शास्त्र-सिद्धान्त को पढ़ाने वाले पूज्य उपाध्याय महाराज तथा ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूप रत्नत्रय के आराधक श्रेष्ठ मुनि महाराज, ये पाँच परमेष्ठी प्रतिदिन आपका कल्याण करें ॥१॥

५२—साहुवन्दण-सुत्तं

अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु पण्णरससु कम्मभूमीसु ।
जावंत केवि साहू, रयहरण-गुच्छ-पडिग्गह-धारा ॥१॥
पंचमहव्वय-धारा, अट्ठारस-सहस्स-सीलंग-धारा
अक्खयायार-चरित्ता, ते सव्वे सिरसा मणसा मत्थएण वंदामि ॥२॥

शब्दार्थ

अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु—जम्बू-द्वीप, धातकीखण्ड, और अर्धपुष्कर-द्वीप में, ढाई द्वीप समुद्रों में

पण्णरससु—पन्द्रह ।
कम्मभूमिसु—कर्मभूमियों में ।
जावंत केवि साहू—जो कोई भी साधु ।
रयहरण-गुच्छ-पडिग्गह धारा—रजोहरण, गुच्छक और (काष्ठ) पात्र को धारण करने वाले ।
रयहरण-रज को दूर करने वाला उपकरण विशेष । गुच्छ-पातरे की झोली पर ढँकने का एक प्रकार का ऊन का वस्त्र । पडिग्गह-पातरा, पात्र । धारा-धारण करने वाले ।
पंचमहव्वय धारा—पाँच महाव्रतों को धारण करने वाले ।
अट्ठारस-सहस्स-सीलंग धारा—अठारह हजार शील के अंगों को धारण करने वाले ।
अक्खयायार-चरित्ता—अक्षत आचार और चारित्र आदि (भाव-लिंग) को धारण करने वाले
ते—उन
सव्वे—सबको
सिरसा—सिर काया से ।
मणसा—मन से
मत्थएण वंदामि—मस्तक से वन्दन करता हूं ।

ढाई[1] द्वीप में आयी हुई पन्द्रह कर्मभूमियों में जो साधु रजोहरण गुच्छ और (काष्ठ) पात्र (आदि द्रव्यलिंग) तथा पाँच महाव्रत, अठारह हजार शीलांग अक्षत आचार और चारित्र आदि (भाव-लिंग) के धारण करने वाले हों, उन सबको काया तथा मन से वन्दन करता हूं ॥

---

१. इस सूत्र से ढाई द्वीप में स्थित साधु-मुनिराजों को वन्दन किया जाता है, इसलिये यह 'साहु-वन्दण-सुत्त' कहलाता है ।

शीलांग-र

कुल १८०००

न करे ६०००	न करावे ६०००	न अनु.करे ६०००							
मनो योग २०००	वचन योग २०००	काययोग २०००							
आहार संज्ञा ५००	भय संज्ञा ५००	मैथुन संज्ञा ५००	परिग्रह संज्ञा ५००						
श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह १००	चक्षु निग्रह १००	घ्राणे० नि० १००	रसने० नि० १००	स्पर्शे० नि० १००					
पृथ्वी० १०	अप् १०	तेउ० १०	वाउ० १०	वन० १०	दो. इ. १०	तीन इ. १०	चतु. इ. १०	पञ्च. इ. १०	अजीव १०
क्षमा १	मार्दव २	आर्जव ३	मुक्ति ४	तप ५	संयम ६	सत्य ७	शौच ८	अकिंचनत्व ९	ब्रह्मचर्य १०

शीलांग रथ

यति धर्म दस प्रकार का है:–(१) क्षमा, (२) मार्दव, (३) आर्जव (४) मुक्ति, (५) तप, (६) संजम (७) सत्य, (८) शौच (९) अकिञ्चनत्व और (१०) ब्रह्मचर्य, इसलिये सबसे नीचे के कोष्ठक में यह बतलाया है। यति को (१) पृथ्वीकाय-समारम्भ, (२) अप्काय-समारम्भ, (३) तेजस्काय-समारम्भ, (४) वायुकाय-समारम्भ, (५) वनस्पतिकाय-समारम्भ, (६) द्वीन्द्रिय-समारम्भ, (७) त्रीन्द्रिय-समारम्भ (८) चतुरन्द्रिय-समारम्भ, (९) पञ्चेन्द्रिय-समारम्भ, और (१०) अजीव-समारम्भ की जयणा करने की है, अतः दूसरे कोष्ठक में यह बतलाया है। यह यतिधर्मयुक्त जयणा पाँच इन्द्रिय जयपूर्वक की जाती है, इसलिये तीसरे कोष्ठक में पाँच इन्द्रियों के नाम दिखाये हैं। अर्थात् शील के कुल भेद ५०० हुए।

इस भेद को आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन चार संज्ञाओं से मनोयोग, वचनयोग और काययोग इन तीन योगों से करना नहीं, कराना नहीं और करते हुए का अनुमोदन करना नहीं इन तीन करणों से गुणन करने पर अठारह हजार शीलांग होते हैं।

१० × १० × ५ × ४ × ३ × ३ = १८०००

५३ लघु-शान्ति-स्तव

शांतिं शान्ति-निशान्तं, शान्ताऽशिवं नमस्कृत्य।
स्तोतुः शांति-निमित्तं, मंत्रपदैः शान्तये स्तौमि ॥१॥

शब्दार्थ

शान्ति—श्री शान्तिनाथ भगवान् को।
शान्ति-निशान्तं—शान्ति के गृह समान।
शान्तं—शान्तरस से युक्त, प्रशम-रस-निमग्न
शान्ताऽशिवं—जिसने अशिव को शान्त किया है, अशिव का नाश करने वाले।
नमस्कृत्य—नमस्कार करके।
स्तोतु—स्तुति करने वाले की।
शान्ति निमित्तं—शान्ति के निमित्त, शान्ति करने में निमित्त-भूत ऐसे साधन (तन्त्र) का।
मन्त्रपदै—मंत्रपदों से, मन्त्रगर्भित पदों से।
शान्तये—शान्ति के लिये
स्तौमि—स्तवन करता हूं वर्णन करता हूं।

भावार्थ—शान्ति के गृहसमान, प्रशमरस-निमग्न और अशिव का नाश करने वाले श्रीशान्तिनाथ भगवान् को नमस्कार करके, स्तुति करने वाले की शान्ति के लिये मैं मन्त्र-गर्भित पदों से शान्ति करने में निमित्त-भूत ऐसे साधन (तन्त्र) का वर्णन करता हूं ॥१॥

ओमिति-निश्चित-वचसे, नमो नमो भगवतेऽर्हते पूजाम्।
शान्ति-जिनाय जयवते, यशस्विने, स्वामिने दमिनाम्॥२॥

शब्दार्थ

ओम्—ॐकार, परम-तत्त्व की विशिष्ट संज्ञा।
इति—ऐसे।
निश्चितवचसे—व्यवस्थित वचन वाले।

नमो नमः—नमस्कार हो, नमस्कार हो।

भगवते—भगवान् को।

अर्हते पूजाम्—द्रव्य तथा भावपूजा के योग्य।

शान्तिजिनाय—श्री शान्तिजिन के लिये, श्रीशान्ति जिन को।

जयवते—जयवान्।

यशस्विने—यशस्वी।

स्वामिने दमिनाम्—योगियों के स्वामी, योगीश्वर।

भावार्थ—ॐ पूर्वक नाममन्त्र का प्रारंभ करते हैं। (१) व्यवस्थित वचनवाले, (२) भगवान् (३) द्रव्य तथा भाव पूजा के योग्य, (४) जयवान (५) यशस्वी और (६) योगीश्वर ऐसे श्रीशान्ति जिन को नमस्कार हो, नमस्कार हो ॥२॥

सकलातिशेषक-महा-सम्पत्ति-समन्विताय शस्याय।
त्रैलोक्य-पूजिताय च, नमो नमः शान्ति देवाय ॥३॥

शब्दार्थ

सकलातिशेषक-महा-सम्पत्ति—

समन्विताय—चौंतीस अतिशयरूप महासम्पत्ति से युक्त। सकल-समग्र। अतिशेषक-अतिशय समन्वित-युक्त।

शस्याय—प्रशस्त।

त्रैलोक्य-पूजिताय—त्रिलोक में पूजित, त्रैलोक्य-पूजित।

च—और

नमो नमः—नमस्कार हो, नमस्कार हो :

शांतिदेवाय—शान्ति के अधिपति को, श्रीशान्तिनाथ भगवान् को।

भावार्थ—(७) चौंतीस अतिशयरूप महासम्पत्ति से युक्त, (८) प्रशस्त, (९) त्रैलोक्य—पूजित और (१०) शान्ति के अधिपति ऐसे श्रीशान्तिनाथ भगवान् को नमस्कार हो, नमस्कार हो ॥३॥

सर्वामर-सुसमूह-स्वामिक-सम्पूजिताय निजिताय।
भुवन-जन-पालनोद्यत-तमाय सततं नमस्तस्मै ॥४॥

शब्दार्थ

सर्वामर-सुसमूह-स्वामि-सम्पूजिताय—सर्व देवसमूह के स्वामियों द्वारा विशिष्ट प्रकार से पूजित

निर्जिताय—किसी से नहीं जीते गये, अजित।

भुवन-जन-पालनोद्यत तमाय—विश्व के लोगों का रक्षण करने में तत्पर।

सततं—सदा।

नमः—नमस्कार हो।

तस्मै—उन श्रीशान्तिनाथ को।

भावार्थ—(११) सर्व देवसमूह के स्वामियों द्वारा विशिष्ट प्रकार से पूजित, (१२) अजित और (१३) विश्व के लोगों का रक्षण करने में तत्पर ऐसे श्रीशान्तिनाथ को सदा नमस्कार हो ॥४॥

सर्व-दुरितौघ-नाशन कराय सर्वाऽशिव-प्रशमनाय।
दुष्ट-ग्रह-भूत-पिशाच-शाकिनीनां प्रमथनाय ॥५॥

शब्दार्थ

सर्व-दुरितौघ-नाशन-कराय—समग्र भय-समूहों का नाश करने वाले

सर्वा-शिव-प्रशमनाय—सर्व उपद्रवों का शमन करने वाले।

दुष्ट-ग्रह-भूत-पिशाच-शाकिनीनां-प्रमथनाय—दुष्टग्रह, भूत, पिशाच शाकिनियों द्वारा उत्पादित पीड़ाओं का नाश करने वाले।

भावार्थ—(१४) समग्र भय-समूहों का नाश करने वाले, (१५) सर्व उपद्रवों का शमन करने वाले और (१६) दुष्ट ग्रह; भूत, पिशाच तथा शाकिनियों द्वारा उत्पादित पीड़ाओं का नाश करने वाले ऐसे श्रीशान्तिनाथ भगवान् को नमस्कार हो ॥५॥

यस्येति-नाम-मन्त्र-प्रधान-वाक्योपयोग-कृत-तोषा ।
विजया कुरुते जन-हित-मिति च नुता नमत तं शान्तिम् ।६।

शब्दार्थ

यस्य—जिनके	विजया—विजयादेवी
इति—ऐसे	कुरुते—करती है
नाममन्त्र-प्रधान-वाक्योपयोग-कृत-तोषा—नाममन्त्र वाले उत्तम अनुष्ठानों से तुष्ट की हुई । भगवान् के विशिष्ट नामवाले मन्त्र को 'नाममन्त्र' कहते हैं । वाक्योपयोग-विधि-युक्त जप अथवा अनुष्ठान ।	जनहितम्—लोगों का हित । इति—इससे । च—ही नुता—स्तुति की गई है । नमत—नमस्कार करो । तं—उन शांतिम्—श्रीशान्तिनाथ को ।

भावार्थ—जिनके नाममन्त्रवाले उत्तम अनुष्ठानों से तुष्ट की हुई विजयादेवी लोगों का (ऋद्धि-सिद्धि-प्रदानपूर्वक) हित करती है, उन श्रीशान्तिनाथ को (हे मनुष्यो ! तुम) नमस्कार करो और विजया (जया) देवी कार्य करने वाली है इससे उसकी भी प्रसंगानुसार यहाँ स्तुति की गई है ॥६॥

भवतु नमस्ते भगवति, विजये ! सुजये ! परापरैरजिते ।
अपराजिते ! जगत्यां, जयतीति जयावहे भवति ॥७॥

शब्दार्थ

भवतु —हो ।	ते—आपको ।
नमः—नमस्कार	भगवति—हे भगवती !

विजये !—हे विजिया !
सुजये !—हे सुजया !
परापरै—परापर और अन्य रहस्यों से ।
अजिते !—हे अजिता !
अपराजिते !—हे अपराजिता !
जगत्यां—जम्बूद्वीप में, जगत् में ।
जयति—जय को प्राप्त होती है ।
इति—इसलिये ।
जयावहे !- हे जयावहा !
भवति—हे भवति !

भावार्थ—हे भगवती ! हे विजया ! हे सुजया ! हे अजिता ! हे अपराजिता ! हे जयावहा ! हे भवती ! आपकी शक्ति परापर और अन्य रहस्यों से जगत् में जय को प्राप्त होती है, इसलिये आपको नमस्कार हो ॥७॥

सर्वस्यापि च सङ्घस्य, भद्र-कल्याण-मंगल-प्रददे ! ।
साधूनां च सदा शिव सुतुष्टि-पुष्टि-प्रदे जीयाः ॥८॥

शब्दार्थ

सर्वस्य—सकल ।
अपि च—और
संघस्य—सङ्घ को ।
भद्र-कल्याण-मंगल-प्रददे !—भद्र, कल्याण और मंगल देने वाली !
साधूनां—साधुओं को, श्रमणसंघ को ।
च—उसी प्रकार ।
सदा—निरन्तर, सदा ।
शिव-सुतुष्टि-पुष्टि-प्रदे !—निरुपद्रवी वातावरण, तुष्टि और पुष्टि देनेवाली ।
जीयाः—आपकी जय हो ।

भावार्थ—सकलसंघ को भद्र, कल्याण और मंगल देने वाली, उसी प्रकार श्रमण संघ को सदा निरुपद्रवी वातावरण, तुष्टि और पुष्टि देने वाली हे देवी ! आपकी जय हो ॥८॥

भव्यानां कृतसिद्धे, निर्वृति-निर्वाण-जननि ! सत्त्वानाम्
अभय-प्रदान-निरते, नमोऽस्तु स्वस्तिप्रदे तुभ्यम् ॥९॥

शब्दार्थ

भव्यानां—भव्य उपासकों को ।

कृतसिद्धे ! हे कृतसिद्धा, हे सिद्धिदायिनी !

निर्वृति-निर्वाण जननि ! शांति तथा प्रमोद को देने में कारणभूत, शान्ति तथा परम प्रमोद देनेवाली ।

सत्त्वानाम्—सत्त्वशाली उपासकों को ।

अभय-प्रदान-निरते !—अभय दान करने में तत्पर, निर्भयता देने वाली !

नमः अस्तु—नमस्कार हो !

स्वस्तिप्रदे !—क्षेम करने वाली !

तुभ्यम्—आपके लिये, आपको !

भावार्थ—भव्य उपासकों को सिद्धि, शान्ति और परम-प्रमोद देनेवाली सत्त्वशाली उपासकों को निर्भयता और क्षेम देने वाली हे देवी ! आपको नमस्कार हो ॥९॥

भक्तानां जन्तूनां, शुभावहे नित्यमुद्यते ! देवि !
सम्यग्दृष्टिनां धृति-रति-मति बुद्धि-प्रदानाय ॥१०॥
जिन-शासन-निरतानां, शान्ति-नतानां च जगति जनता-
नाम् ।
श्री-सम्पत्-कीर्ति-यशो-वर्द्धनि ! जय देवि ! विजयस्व
॥११॥

शब्दार्थ

भक्तानां जन्तूनां—कनिष्ठ उपासकों का।

शुभावहे—शुभ करने वाली।

नित्यम्—सदा।

उद्यते !—उद्यमवती, ! तत्पर रहने वाली !

देवि !—हे देवी !

सम्यग्दृष्टिनां—सम्यग्दृष्टि वाले जीवों को।

धृति-रति-मति-बुद्धि-प्रदानाय—धृति, रति मति और बुद्धि देने में सदा तत्पर। धृति-स्थिरता। रति-हर्ष। मति-विचार-शक्ति। बुद्धि-अच्छे बुरे का निर्णय करने वाली शक्ति।

जिनशासन-निरतानां शांति-नतानां च—जैन धर्म में अनुरक्त तथा शान्तिनाथ भगवान् को नमन करने वाली।

जगति—जगत् में।

जनतानां—जनता के लिये।

श्री-सम्पत्-कीर्ति-यशो वर्द्धनि ! लक्ष्मी, सम्पत्ति, कीर्ति और यश में वृद्धि करने वाली।

जय—आपकी जय हो।

देवि !—हे देवी !

विजयस्व—आपकी विजय हो।

भावार्थ—कनिष्ट उपासकों का शुभ करने वाली, सम्यग्दृष्टि वाले जीवों को धृति, रति, मति और बुद्धि देने में सदा तत्पर रहने वाली, जैन धर्म में अनुरक्त तथा शान्तिनाथ भगवान् को नमन करने वाली जनता के लिये लक्ष्मी, सम्पत्ति, कीर्ति और यश में वृद्धि करने वाली हे देवी ! आपकी जगत् में जय हो ! विजय हो ! ॥१०-११॥

सलिलानल-विष-विषधर, दुष्टग्रह-राज-रोग-रण-भयतः।
राक्षस-रिपु-गण मारी-चौरेति-श्वापदादिभ्यः ॥१२॥
अथ रक्ष रक्ष सुशिवं, कुरु कुरु शान्तिं च कुरु कुरु सदेति।
तुष्टिं च कुरु कुरु पुष्टिं, कुरु कुरु स्वस्ति च कुरु कुरु त्वम्
॥१३॥

शब्दार्थ

सलिलानल-विष-विषधर-दुष्टग्रह-राज-रोग-रण-भयतः—जल, अग्नि विष, सर्प, दुष्टग्रह, राजा, रोग और युद्ध-इन आठ प्रकार के भयों से। सलिल-जल। अनल-अग्नि। विष-जहर। विषधर-सर्प। दुष्ट-ग्रह-गोचर में स्थित अशुभ ग्रह। रण-युद्ध।

राक्षस-रिपुगण-मारी-चौरेति-श्वापदादिभ्यः—राक्षस, शत्रुसमूह, महामारी, चोर, सात ईति, हिंस्र पशु आदि के उपद्रव से।

अथ—अब।

रक्ष-रक्ष—रक्षण कर, रक्षण कर।

सुशिवं कुरु कुरु—उपद्रव रहित कर।

शान्ति च कुरु कुरु—और शान्ति कर।

सदा—निरन्तर।

इति—इति, समाप्ति।

तुष्टि कुरु कुरु—तुष्टि कर, तुष्टि कर।

स्वस्ति च कुरु कुरु—और क्षेम कर क्षेम कर।

त्वं—तू।

भावार्थ—और तू जल भय से, अग्नि भय से, विष भय से, सर्प भय से, दुष्टग्रहों के भय से, राज भय से, रोग भय से, रण भय से, राक्षसों के उपद्रव से, शत्रु समूह के उपद्रव से, महामारी के उपद्रव से, चोर के उपद्रव से, ईतिसंज्ञक उपद्रव से, शिकारी (हिंस्र) पशुओं के उपद्रव से और भूत, पिशाच तथा शाकिनियों के उपद्रव से रक्षण कर! रक्षण कर! उपद्रव रहित कर, उपद्रव-रहित कर, शान्ति कर, शान्ति कर, तुष्टि कर, पुष्टि कर, पुष्टि कर, क्षेम कर, क्षेम कर ॥१२-१३॥

भगवति ! गुणवति ! शिव-शान्ति-तुष्टि-
पुष्टि-स्वस्तीह कुरु कुरु जनानाम् ।

ओमिति नमो नमो ह्राँ ह्रीं ह्रूँ ह्रः—
यः क्षः ह्रीँ फुट् फुट् स्वाहा ॥१४॥

शब्दार्थ

भगवति !—हे भगवती !
गुणवति !—हे गुणवती !
गुण-सत्त्व, रजस् और तमस् ।
शिव-शान्ति-तुष्टि-पुष्टि-स्वस्तिह कुरु-कुरु—आप यहाँ निरुपद्रवता, शान्ति, तुष्टि पुष्टि और क्षेम करो, क्षेम करो ।
जनानाम्—मनुष्यों के लिये ।
ॐनमो नमो ह्राँ ह्रीं ह्रूँ ह्रः यः क्षः ह्रीं फुट् फुट् स्वाहा—यह एक प्रकार का षोडशी (देव) मन्त्र है ।

भावार्थ—हे भगवती ! हे गुणवती ! आप यहाँ मनुष्यों के लिये निरुपद्रवता, शान्ति, तुष्टि और क्षेम करो, ॐ नमो नमो, ह्राँ ह्रीं ह्रूँ ह्रः यः क्ष, ह्रीँ फुट् फुट् स्वाहा' ॥१४॥

एवं यन्नामाक्षर-पुरस्सरं संस्तुता जयादेवी ।
कुरुते शान्तिं नमतां, नमो नमः शान्तये तस्मै ॥१५॥

शब्दार्थ

एवं— ऊपर कहे अनुसार ।
यन्नामाक्षर-पुरस्सरं—जिनके नाम-मन्त्र और अक्षर मन्त्र की पुरश्चर्या पूर्वक ।
संस्तुता—अच्छी तरह स्तुति की हुई ।
जयादेवी— जयादेवी ।
कुरुते शान्तिं—शान्ति करती है ।
नमतां—नमन करने वालों को ।
नमो नमः—नमस्कार हो, नमस्कार हो ।
शान्तये तस्मै—उन श्रीशान्तिनाथ भगवान् को ।

भावार्थ—ऊपर कहे अनुसार जिसके नाम मन्त्र और अक्षर मन्त्रों की पुरश्चर्या पूर्वक अच्छी तरह स्तुति की हुई (विजया—)जयादेवी

नमन करनेवालों की शान्ति करती है, उन श्रीशान्तिनाथ भगवान् को नमस्कार हो, नमस्कार हो ॥१५॥

इति पूर्व-सूरि-दर्शित-मंत्रपद-विदर्भितः स्तवः शान्तेः ।
सलिलादि-भय-विनाशी, शान्त्यादिकरश्च भक्तिमताम् ॥१६

शब्दार्थ

इति – अन्त में ।
पूर्व सूरि-दर्शित-मन्त्रपद-विदर्भितः- पूर्वसूरियों द्वारा गुर्वाम्नाय-पूर्वक प्रकट किये हुए मन्त्र पदों से गूंथा हुआ ।
स्तवः शान्तेः—शान्ति-स्तव ।
सलिलादि-भय-विनाशी—जलादि के भय से मुक्त करनेवाला ।
शान्त्यादिकर उपद्रवों की शान्ति पूर्वक तुष्टि और पुष्टि को भी करनेवाला ।
च और ।
भक्तिमताम्— भक्ति करनेवालों को, विधि-पूर्वक अनुष्ठान करने वालों को ।

भावार्थ —अन्त में यही कहना है कि यह शांति स्तव पूर्व सूरियों द्वारा गुर्वाम्नायपूर्वक प्रकट किये हुये मन्त्रपदों से गूंथा हुआ है और यह विधि-पूर्वक अनुष्ठान करनेवालों को जलादि के भय से मुक्त करनेवाला तथा उपद्रवों की शान्ति-पूर्वक तुष्टि और पुष्टि को भी करनेवाला है ॥१६॥

यश्चैनं पठति सदा, शृणोति भावयति वा यथायोगम् ।
स हि शान्ति-पदं यायात्, सूरिः श्रीमानदेवश्च ॥१७॥

शब्दार्थ

यः—जो ।
च—और ।
एनं—इस स्तव को ।
पठति—पढ़ता है ।
सदा—निरन्तर, सदा ।
शृणोति—दूसरों के पास से सुनता है ।

भावयति वा यथायोगम्—अथवा मन्त्रयोग के नियमानुसार उसकी भावना करता है।

स—वह

हि—निश्चय

शान्तिपदं—सिद्धि पद को, शान्ति पद को।

यायात्—प्राप्त करे।

सूरिः श्रीमानदेवश्च—श्रीमानदेव सूरि भी।

भावार्थ—और जो इस स्तव को सदा भावपूर्वक पढ़ता है, दूसरे के पास से सुनता है, तथा मन्त्रयोग के नियमानुसार उसकी भावना करता है, वह निश्चय ही शान्तिपद को प्राप्त करता है। सूरि श्रीमानदेव भी शान्तिपद को प्राप्त करें ॥१७॥

उपसर्गाः क्षयं यान्ति, छिद्यन्ते विघ्नवल्लयः।
मनः प्रसन्नतामेति, पूज्यमाने जिनेश्वरे ॥१८॥

शब्दार्थ

उपसर्गाः—उपसर्ग, आपत्तियाँ।

क्षयं यान्ति—नष्ट होते हैं।

छिद्यन्ते—कट जाती है।

विघ्न-वल्लयः—विघ्नरूपी लताएं

मनः—मन।

प्रसन्नताम् एति—प्रसन्नता को प्राप्त होता है।

पूज्यमाने जिनेश्वरे—जिनेश्वर देव का पूजन करने से

भावार्थ—श्री जिनेश्वर देव का पूजन करने से समस्त प्रकार के उपसर्ग नष्ट होते हैं, विघ्नरूपी लताएं कट जाती हैं और मन प्रसन्नता को प्राप्त होता है ॥१८॥

सर्व मङ्गल-मांगल्यं, सर्व-कल्याणकारणम्
प्रधानं सर्व-धर्माणां, जैनं जयति शासनम् ॥१९॥

सर्व मंगल मांगल्यं—अर्थ पूर्ववत्०

शब्दार्थ

भावार्थ—सर्व मङ्गलों में मङ्गलरूप, सर्व कल्याणों का कारण रूप और सर्व धर्मों में श्रेष्ठ ऐसा जैन शासन (प्रवचन) सदा जयवाला है।१९॥

वीर-निर्वाण की सातवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में शाकम्भरी नगरी में किसी कारण से कुपित हुई शाकिनी ने महामारी का उपद्रव फैलाया। यह उपद्रव इतना भारी था कि इसमें औषध और वैद्य कुछ भी काम नहीं आ सकते थे। इसलिये प्रतिक्षण मनुष्य मरने लगे और सारी नगरी श्मशान जैसी भयंकर दिखने लगी।

इस परिस्थिति में कुछ सुरक्षित रहे हुए श्रावक जिनचैत्य में एकत्रित होकर विचार करने लगे, तब आकाश से आवाज हुई कि 'तुम चिन्ता क्यों करते हो? नाडूल नगरी में श्रीमानदेवसूरि विराजते हैं, उनके चरणों के प्रक्षालन (जल) का तुम्हारे मकानों में छिटकाव करो जिससे सम्पूर्ण उपद्रव शान्त हो जायगा।'

इस वचन से आश्वासन पाये हुए सङ्घ ने वीरदत्त नाम के एक श्रावक को विज्ञप्ति-पत्र देकर नाडूल नगरी (नाडोल-मारवाड़ में) श्री मानदेवसूरि के पास भेजा।

सूरिजी तेजस्वी, ब्रह्मचारी और मन्त्रसिद्ध महापुरुष थे तथा लोकोपकार करने की परम निष्ठावाले थे, इससे उन्होंने शान्ति-स्तव नाम का एक मन्त्रयुक्त चमत्कारिक स्तोत्र बनाकर दिया और चरणोदक भी दिया। यह शान्ति-स्तव लेकर वीरदत्त शाकम्भरी नगरी में आया। वहाँ उनके चरण जल का (शान्ति-स्तव से मन्त्रित) अन्य जल के साथ मन्त्रित कर छिटकाव करने से तथा शान्ति-स्तव का पाठ करने से महामारी का उपद्रव शान्त हो गया। तब से यह स्तव सब प्रकार के उपद्रवों के निवारणार्थ बोला जाता है। प्रतिक्रमण में यह कालान्तर से प्रविष्ट हुआ है।

प्रश्न—शान्तिस्तव का पाठ करने से कौनसे भय दूर होते हैं ?

उत्तर—शान्ति-स्तव का पाठ करने से नीचे लिखे भय दूर होते हैं:—

(१) जल का भय (अतिवृष्टि बाढ़ आदि)
(२) अग्नि का भय।
(३) विष का भय।
(४) सर्प का भय।
(५) दुष्ट ग्रह का भय।
(६) राज का भय।
(७) रोग का भय।

(८) युद्ध का भय, (लड़ाई-झगड़ा, आक्रमण आदि का भय)

प्रश्न—शान्ति-स्तव का पाठ करने से कौनसे उपद्रव शान्त होते हैं।

उत्तर—शान्ति-स्तव का पाठ करने से नीचे लिखे उपद्रव शान्त होते हैं :—

(१) राक्षस का उपद्रव।
(२) शत्रु समूह का उपद्रव।
(३) महामारी (प्लेग आदि महा रोगों का उपद्रव)
(४) चोर का उपद्रव।
(५) ईतिसंज्ञक-उपद्रव (१) अतिवृष्टि होना, (२) बिलकुल वृष्टि न होना, (३) चूहों की वृद्धि होना, (४) पतंगे आदि का आधिक्य होना, (५) शुकों की बहुलता, (६) अपने राज्य मण्डल में आक्रमण होना और (७) शत्रु सैन्य की चढ़ाई, ये सात ईतिसंज्ञक उपद्रव हैं।)

(६) हिंसक (शिकारी) पशुओं का उपद्रव।

(७) भूत-पिशाच का उपद्रव।